









## प्रस्तावना ।

— २४८ —

सद्य गणतान्त्रिकाद्याहारमायानिता। तृष्णान् विंशतिः सप्ताश्वरूपे। एवः । अतः सर्वेषां प्रतीयासो द्विष्ठांशुः दक्षिणाः सर्वे भूगोलित्यापर्यंते । अत्य च विंशतिः सप्ताश्वरूपे-

टक्कपिण्डतर्परेतद्वन्यनिर्माणावस्ते मातृकोद्वारसहस्रतिनिपत्तारम्भन्यस्मैलोडनपुरासर सफलशास्त्रभेदयोपन्यासे एः प्रपार्थः समाख्यत, न ते कर्मधत्तसाधारणोऽनुरुद्धर्शनुयादपि वर्षंशतारूपशास्त्राव्यपत्तभृषितिश्चमः ।

सोऽपे “मातृकाविलोक्य” नामा धैर्य, प्रोक्तपणिहृतैः सर्वं गतं त्याजाय निरन्तिरोप्रभि केवलमुदारया मुद्रया भवति त्रिमपि मुद्रणापि भासीयत । स भाष्य मया सादृशं स्वीकृत्य स्पर्शीय “श्रीविक्षेपधर” मुद्रणालम्बे मुद्रगित्या प्राप्ताः स्यत ।

इतः परम्पर्यथे सकलशासविद्यामर्येजिहासुन्महीयसो विद्वश्च जनाद्-पद्-रत् प्रधं  
संगृह्य पाचेवाने च सकलविद्याव्योपज्ञेयन सतोषेण फृतार्थ्येन्तु श्रीमत्पुणिडितयर्वद्वधिर-  
• .रिपत्रिभ्यान् । इति शम् ॥

**सकलविद्वज्ञनमेमाभिलापी-**

स्वेमराज श्रीकृष्णदास,  
“श्रीयेद्गुटेश्वर” छापाखाना-संवर्द्ध.

श्रीः ।

# अथ मातृकाविलासानुक्रमाणिका ।

| क्रमांकः | विषयः   | पृष्ठांकः |
|----------|---|-----------|
| १        | १ महालाचरणम्  | २८        |
| २        | २ अौस्त्वान्ति श्रीगणेशाय नम इति<br>दशाक्षरीविद्याया अनेक-<br>रोडर्थः | २९        |
| ३        | ३ अथ दशाक्षरीविद्याया विष्णु-<br>पक्षेऽर्थः                           | ३१        |
| ४        | ४ अथ महेश्वरपक्षेऽर्थः  | ३८        |
| ५        | ५ अथ सूर्यपक्षेऽर्थः  | ४०        |
| ६        | ६ अथ चन्द्रपक्षेऽर्थः   | ४१        |
| ७        | ७ अयोद्धारपक्षेऽर्थः  | ४२        |
| ८        | ८ अथ गुरुपक्षेऽर्थः   | ४३        |
| ९        | ९ अयेन्द्रपक्षेऽर्थः  | ४४        |
| १०       | १० शेषपक्षे   | ४५        |
| ११       | ११ दुर्गापक्षे  | ४६        |
| १२       | १२ गायुपक्षे  | ४७        |
| १३       | १३ गमिपक्षे   | ४८        |
| १४       | १४ वराजपक्षे  | ४९        |
|          | १५ गणपक्षे  |           |
|          | १६ वतीपक्षे   |           |
|          | १७ वरपक्षे  |           |
|          | १८ वतीपक्षे   |           |
|          | १९ वरपक्षे  |           |
|          | २० वतीपक्षे   |           |
|          | २१ वरपक्षे  |           |
|          | २२ वरपक्षे  |           |
|          | २३ वरपक्षे  |           |
|          | २४ वरपक्षे  |           |
|          | २५ वरपक्षे  |           |
|          | २६ वरपक्षे  |           |
|          | २७ वरपक्षे  |           |
|          | २८ वरपक्षे  |           |
|          | २९ वरपक्षे  |           |
|          | ३० वरपक्षे  |           |
|          | ३१ वरपक्षे  |           |
|          | ३२ वरपक्षे  |           |
|          | ३३ वरपक्षे  |           |
|          | ३४ वरपक्षे  |           |

| प्रमाणः | विषयः   | पृष्ठां | प्रमाणः | विषयः  | पृष्ठां                         |
|---------|---|---------|---------|--------|---------------------------------|
| ४२      | मात्रपताका  | ....    | ५६      | ६९     | द्विमन्त्रोद्धारः               |
| ४३      | वर्णमस्तारविधिः   | ....    | ५७      | ७०     | तुरीमन्त्रोद्धारः               |
| ४४      | अथ नष्टम्   | ....    | "       | ७१     | दक्षिणाकाळीमन्त्रोद्धारः        |
| ४५      | वर्णमेरुः   | ....    | "       | ७२     | इयाममन्त्रः                     |
| ४६      | वर्णपताका   | ....    | "       | ७३     | कालरात्यामन्त्रोद्धारः          |
| ४७      | चतुरस्तमस्तारः  | ....    | ५८      | ७४     | अव्यूपार्णमन्त्रोद्धारः         |
| ४८      | एकाक्षरवर्णमेरुः  | ....    | "       | ७५     | कुलवागीश्वरीमन्त्रोद्धारः       |
| ४९      | अष्टकलपताका   | ....    | "       | ७६     | कुमारमन्त्रास्तत्र गणेशमन्त्रो- |
| ५०      | चतुर्वर्णपताका  | ....    | ५९      | द्धारः | ....                            |
| ५१      | अन्यरत्या पताकारचना   | ....    | "       | ७७     | कुमारमन्त्राः                   |
| ५२      | पञ्चवर्णपताकाचक्रम्   | ....    | ६०      | ७८     | कार्तवीर्यार्जुनस्य मन्त्रः     |
| ५३      | वर्णमर्कटविधिः  | ....    | "       | ७९     | हनुमन्त्रः                      |
| ५४      | वर्णसूचीविधिः   | ....    | ६१      | ८०     | भेरवमन्त्रः                     |
| ५५      | अष्टाक्षरसूचीप्रदर्शनम्                                     | ....    | "       | ८१     | महामृत्युञ्जयमन्त्रः            |
| ५६      | संख्यानम्   | ....    | ६२      | ८२     | अथ नवग्रहमन्त्रास्तत्रादौ सू-   |
| ५७      | गणस्वरूपदेवताफलमित्रादि-<br>भावचक्रम्                       | ....    | "       |        | र्यमन्त्रः                      |
| ५८      | दक्षिणामूर्तिविरचितवीजिको-<br>शसारः                         | ....    | ६४      | ८३     | शुक्रमन्त्रः                    |
| ५९      | तदत्तम्येव कानिचिदस्योदाह-<br>रणानि तत्रविपुरामन्त्रोद्धारः | ६७      |         | ८४     | वृहस्पतिमन्त्रः                 |
| ६०      | छम्भीमन्त्रोद्धारः  | ....    | "       | ८५     | चन्द्रमन्त्रः                   |
| ६१      | सरस्वतीमन्त्रोद्धारः  | ....    | ६८      | ८६     | त्रिश्यहमन्त्रोद्धारः           |
| ६२      | तारामन्त्रोद्धारः   | ....    | "       | ८७     | शनैश्चरमन्त्रः                  |
| ६३      | अथ मातृज्ञायाः  | ....    | "       | ८८     | राहुमन्त्रः                     |
| ६४      | शारिकामन्त्रोद्धारः   | ....    | "       | ८९     | केतुमन्त्रः                     |
| ६५      | राज्ञीमन्त्रोद्धारः   | ....    | "       | ९०     | मातृकाकमतो बीजानि               |
| ६६      | भेदामन्त्रः   | ....    | ६९      | ९१     | मातृकाया भेददयकथनम्             |
| ६७      | ज्वालामुखीमन्त्रोद्धारः                                     | ....    | "       | ९२     | अन्तर्मातृकायाऽङ्गन्दर्थिदेवता- |
| ६८      | विपराससीनां मन्त्रोद्धारः                                   | ....    | "       |        | दिक्थनम्                        |
| ६९      | ध्यानम्   | ....    | "       | ९३     | करन्यासः                        |
| ७०      | ध्यानम्   | ....    | "       | ९४     | ध्यानम्                         |

# अनुक्रमाणिका।

३८

|          |                             |           |          |                              |           |
|----------|-----------------------------|-----------|----------|------------------------------|-----------|
| क्रमांकः | विषयः                       | पृष्ठांकः | क्रमांकः | विषयः                        | पृष्ठांकः |
| १५       | अथ वहिर्मतुका               | ७८        | १२०      | यकारपक्षः                    | ९१        |
| १६       | वहिर्मतुकायाशद्यन्देशादयः   | ७९        | १२१      | तपक्षः                       | ९१        |
| १७       | वहिर्मतुकान्यासः            | "         | १२२      | यकारपक्षः                    | ९२        |
| १८       | ध्यानम्                     | "         | १२३      | दपक्षः                       | ९२        |
| १९       | विलोममातृका                 | "         | १२४      | धकारपक्षः                    | ९२        |
| २०       | अनुलोममातृकायाः स्वरूपम्    | ८०        | १२५      | नपक्षः                       | ९२        |
| २०१      | प्रतिलोममातृकायाः स्वरूपम्  | "         | १२६      | पकारपक्षः                    | ९२        |
| २०२      | मातृकायालिङ्गसंख्यावच्चेना- | "         | १२७      | फपक्षः                       | ९३        |
| पि       | योननाक्यनम्                 | ८१        | १२८      | वकारपक्षः                    | ९३        |
| २०३      | अकारादिपोदशस्वराणां व-      | "         | १२९      | भपक्षः                       | ९३        |
|          | सादिवाचकत्वे सौभारीमुनि-    | "         | १३०      | मकारपक्षः                    | ९३        |
|          | मणीतश्चोकाः                 | ८२        | १३१      | यपक्षः                       | ९४        |
| २०४      | अथ कादिक्षान्तवर्णनां यो-   | "         | १३२      | रकारपक्षः                    | ९४        |
|          | जनाः                        | "         | १३३      | लपक्षः                       | ९४        |
| २०५      | वर्णोत्पत्तिक्रमः           | ८३        | १३४      | वकारपक्षः                    | ९५        |
| २०६      | कादिक्षाक्षर्यर्थः          | ८४        | १३५      | शपक्षः                       | ९५        |
| २०७      | सादिक्षाक्षर्यर्थः          | ८८        | १३६      | षकारपक्षः                    | ९५        |
| २०८      | गपक्षेरर्थः                 | "         | १३७      | सपक्षः                       | ९६        |
| २०९      | षकारपक्षः                   | "         | १३८      | हकारपक्षः                    | ९६        |
| २१०      | डकारपक्षः                   | "         | १३९      | क्षपक्षः                     | ९६        |
| २११      | चपक्षः                      | "         | १४०      | कमातृकार्थयोजना              | ९७        |
| २१२      | छकारपक्षः                   | "         | १४१      | संयुक्तवर्णर्थः              | ९८        |
| २१३      | जपक्षः                      | ८९        | १४२      | वर्णसमाजायादेदाविर्भविक-     | ९८        |
| २१४      | झकारपक्षः                   | "         |          | यनम्                         | १०६       |
| २१५      | ब्रपक्षः                    | "         | १४३      | अक्षरसमाजायत एव आ-           | १०६       |
| २१६      | टकारपक्षः                   | ९०        |          | न्वीक्षिक्यायद्यादशविद्याना- | १०७       |
| २१७      | टपक्षः                      | "         |          | माविर्भविक्यनम्              | १०७       |
| २१८      | टकारपक्षः                   | ९१        | १४४      | चत्वारि धर्मपत्यानानि        | १०८       |
| २१९      | टपक्षः                      | "         | १४५      | तेषां संसेपेण स्वरूपक्षयनम्  | १०८       |
|          |                             |           | १४६      | चतुर्णां वेदानां मयोननम्     | १११       |

| प्रामाण्यः   | विषयः | प्रामाण्यः                                 | विषयः | प्रामाण्यः |
|--|-------|--|-------|------------|
| १४७ वेदाङ्गानां पर्योगने तत्परि-<br>कायाः          | विषयः | १६९ शुद्धारणानि....                        | विषयः | १३०        |
| १४८ व्यापरणपर्योगने तत्परम्-<br>पथ....             | विषयः | १७० शरद्यारणानि....                        | विषयः | १३१        |
| १४९ निर्जनपर्योगनं तत्पररूपधि-<br>ष्टम् ....       | विषयः | १७१ फलद्यारणम्....                         | विषयः | १३२        |
| १५० निष्पत्तिस्वरूपम् ....                         | विषयः | १७२ फलायानम्....                           | विषयः | "          |
| १५१ उद्देश्यरूपं तत्परोननम्....                    | विषयः | १७३ नारायणार्थीपी....                      | विषयः | १३३        |
| १५२ ज्योतिरास्तरूपं तत्परोननम्....                 | विषयः | १७४ ग्रानमुष्टमाकर्णद्यारणानि....          | विषयः | "          |
| १५३ फलस्तरूपं तत्परोननम्....                       | विषयः | १७५ गुणमुष्टयः....                         | विषयः | "          |
| १५४ पुराणोपाराणनामानि....                          | विषयः | १७६ पनुर्मुष्टियोगानम्....                 | विषयः | १३३        |
| १५५ न्यायस्तरूपम्....                              | विषयः | १७७ व्यायाः....                            | विषयः | "          |
| १५६ वेशेषिकस्तरूपम्....                            | विषयः | १७८ एस्यम्....                             | विषयः | "          |
| १५७ पूर्वमीमांसास्वरूपं तत्परो-<br>जनश्च....       | विषयः | १७९ अनेष्यायाः....                         | विषयः | १३४        |
| १५८ उच्चरमीमांसास्वरूपं तत्परो-<br>जनश्च....       | विषयः | १८० अमाक्षिया....                          | विषयः | "          |
| १५९ धर्मशास्त्रस्वरूपप्रयोजनक-<br>थनम्....         | विषयः | १८१ उस्यस्सठननिधिः....                     | विषयः | १३५        |
| १६० चत्वार उपवेदास्तत्रायुवेद-<br>स्वरूपम्....     | विषयः | १८२ दृष्टेदिता....                         | विषयः | "          |
| १६१ आयुवेदान्तर्गतकामशास्त्रनि-<br>रूपणम्....      | विषयः | १८३ हीनगतयः....                            | विषयः | "          |
| १६२ आयुवेदस्य प्रयोननम्....                        | विषयः | १८४ वाणानां उस्यस्सठनगतयः                  | विषयः | १३६        |
| १६३ धनुर्वेदस्वरूपतत्स्थविषया-<br>णां निरूपणम्.... | विषयः | १८५ शुद्धगतयः....                          | विषयः | "          |
| १६४ धनुर्धरप्रशंसा....                             | विषयः | १८६ दृढनतुक्तम्....                        | विषयः | "          |
| १६५ धनुर्दाननिधिः....                              | विषयः | १८७ चित्रविधिः....                         | विषयः | "          |
| १६६ तत्र मन्त्राः....                              | विषयः | १८८ धावलस्यम्....                          | विषयः | १२७        |
| १६७ वेधमकारः....                                   | विषयः | १८९ शब्दवेधित्वम्....                      | विषयः | "          |
| १६८ सापमाणम्....                                   | विषयः | १९० अखविधिः....                            | विषयः | "          |
|  |       | १९१ स्फान्दोककतिचिदस्तरू-<br>पाणि....      | विषयः | १२८        |
|  |       | १९२ तत्र ब्रह्माख्यप्रयोगोपसं-<br>हारी.... | विषयः | "          |
|  |       | १९३ ब्रह्मदण्डप्रयोगोपसंहारी               | विषयः | "          |
|  |       | १९४ ब्रह्मशिरःप्रयोगोपसंहारी               | विषयः | १२९        |
|  |       | १९५ पाशुपतप्रयोगोपसंहारी                   | विषयः | "          |
|  |       | १९६ वायव्यप्रयोगोपसंहारी                   | विषयः | "          |

# अनुक्रमणिका।

६

| क्रमांकः | विषयः                   | क्रमांकः | विषयः                             | क्रमांकः |
|----------|-------------------------|----------|-----------------------------------|----------|
| १९७      | भावेयमयोगोपसंहारी       | १२९      | २३० शुद्धसूखनामानि                | १४१      |
| १९८      | नारसिंहमयोगोपसंहारी     | ....     | २३१ रूपकम्                        | ....     |
| १९९      | शशवारणम्                | ....     | २३२ गमकम्                         | ....     |
| २००      | संग्रामविधिः            | ....     | २३३ प्रत्यन्तरम्                  | ....     |
| २०१      | तत्र रक्षामन्त्रः       | ....     | २३४ स्वरादिकथनम्                  | ....     |
| २०२      | मयाणसमये स्मरणीयनामानि  | २१       | २३५ पटविश्वत्मवत्तेकरागी          | १४२      |
| २०३      | बक्षीहिणीसंस्था         | ....     | २३६ भैरवादिरागाणां पत्न्यः        | ....     |
| २०४      | महाक्षीहिणीसंस्था       | ....     | २३७ रागविशेषे कालविशेषः           | ....     |
| २०५      | व्युहविधिः              | ....     | २३८ भैरवादिरागाणां तत्पत्तीनां    | १४३      |
| २०६      | युद्धविधिः              | ....     | च वर्णनीयरूपाणि तत्र भे-          |          |
| २०७      | गान्धर्ववेदमयोजनम्      | १३३      | रवतत्पत्तीनाम्                    | ....     |
| २०८      | गेयस्य चत्वारः प्रकाराः | १३४      | २३९ मालकौशिकस्य                   | ....     |
| २०९      | चतुर्वेदं वाच्यम्       | ....     | २४० हिन्दोलनामनः                  | ....     |
| २१०      | वृत्त्यसंग्रहः          | ....     | २४१ दीपकस्य                       | ....     |
| २११      | अथ गान्धर्ववेदमक्षिया   | तत्र     | २४२ पाठ्यन्तरम्                   | ....     |
| २१२      | गान्धर्वदक्षणम्         | ....     | २४३ मेष्वनादस्य                   | ....     |
| २१३      | गीतमसंसासा              | ....     | २४४ श्रीरागस्य                    | ....     |
| २१४      | सुगीतलक्षणम्            | ....     | २४५ रागमसंसासा                    | ....     |
| २१५      | वायुपुकारस्य गुणाः      | ....     | २४६ अथ गणाः                       | ....     |
| २१६      | शिष्यकाराः              | ....     | २४७ वर्णप्रस्तारः                 | ....     |
| २१७      | गायनलक्षणानि            | ....     | २४८ गुरुलुभूतदुत्तलक्षणानि        | ....     |
| २१८      | गायनदोषाः               | ....     | २४९ तालप्रस्तारः                  | ....     |
| २१९      | सालसुगृहः               | ....     | २५० अथैषधानि                      | ....     |
| २२०      | मुखकल्पणं तद्देवदात्र   | ....     | २५१ अथ रसशास्त्रमयोजनं तत्स्व-    |          |
| २२१      | पोषणा ध्रुवाणां नामानि  | ....     | रूपञ्च                            |          |
| २२२      | तेपां स्वरूपम्          | १३७      | २५२ शृङ्खारादयो नवरसाः            | ....     |
| २२३      | मण्टकलक्षणम्            | ....     | २५३ तत्र शृङ्खारभेदौ तत्स्वरूपञ्च | ....     |
| २२४      | मतिमण्टलक्षणम्          | ....     | २५४ हास्यस्वरूपम्                 | ....     |
| २२५      | निःसारकलक्षणम्          | १३९      | २५५ करणस्वरूपम्                   | ....     |
| २२६      | पटालदक्षणम्             | ....     | २५६ रीद्रवरूपम्                   | ....     |
| २२७      | रासकलक्षणानि            | ....     | २५७ वीरस्वरूपम्                   | ....     |
| २२८      | एकतालीदक्षणम्           | ....     | २५८ भयानकस्वरूपम्                 | ....     |
| २२९      | अष्टी ध्रुवाः           | ....     | २५९ वीभत्सस्वरूपम्                | ....     |
|          |                         | ....     | २६० अद्भुतस्वरूपम्                | ....     |

| फ्रांड्रा:                      | विषया: | पृष्ठांद्रा: | फ्रांड्रा:                       | विषया: | पृष्ठांद्रा: |
|---------------------------------|--------|--------------|----------------------------------|--------|--------------|
| २६१ शान्तस्वरूपम्               | ....   | १५४          | २९३ लिङ्गश्चेषः                  | ....   | १६३          |
| २६२ रसानां विरोधाविरोधी         | ....   | "            | २९४ भाषाश्चेषः                   | ....   | १६४          |
| २६३ स्थायिनो भावाः              | ....   | १५३          | २९५ प्रकृतिश्चेषः                | ....   | "            |
| २६४ स्थायिलक्षणम्               | ....   | "            | २९६ प्रत्ययश्चेषः                | ....   | "            |
| २६५ तस्यैव विशेषलक्षणम्         | ....   | "            | २९७ विभक्तिश्चेषः                | ....   | "            |
| २६६ विभावस्वरूपम्               | ....   | "            | २९८ महेषिकास्वरूपं तद्देवाश्र    | ....   | १६६          |
| २६७ अनुभावलक्षणम्               | ....   | "            | २९९ अलंकारशेखरमतेन महेषि-        |        |              |
| २६८ सात्त्विकलक्षणम्            | ....   | "            | कालक्षणं तद्देवाश्र              | ....   | "            |
| २६९ व्यभिचारिणो हेतवः           | ....   | १५४          | ३०० विन्दुच्युतकम्               | ....   | १६६          |
| २७० तिस्रोरीतयः                 | ....   | "            | ३०१ व्यञ्जनच्युतकम्              | ....   | १६७          |
| २७१ गौडीस्वरूपम्                | ....   | "            | ३०२ च्युतदत्ताक्षराः             | ....   | "            |
| २७२ वैदर्भीस्वरूपम्             | ....   | "            | ३०३ स्पानच्युतकम्                | ....   | "            |
| २७३ माधवीस्वरूपम्               | ....   | "            | ३०४ अक्षरसुष्टिः                 | ....   | "            |
| २७४ जयदेवमते चतरस्रोरीतयः       | ....   | "            | ३०५ विन्दुमतीः                   | ....   | "            |
| २७५ तासां स्वरूपाणि स्थल्यानि च | १५५    |              | ३०६ प्रश्नोत्तरम्                | ....   | "            |
| २७६ मधुरादयः पञ्च वृत्तयस्तत्र  |        |              | ३०७ यमकलक्षणम्                   | ....   | १६९          |
| मधुरास्वरूपम्                   | ....   | "            | ३०८ यमकस्य विशितिर्भदाः          | ....   | १७०          |
| २७७ मौढास्वरूपम्                | ....   | "            | ३०९ अर्थालिंकारभेदाः             | ....   | १७४          |
| २७८ पहुपास्वरूपम्               | ....   | "            | ३१० उपमोपमानोपमेयलक्षणानि        | ....   | "            |
| २७९ लिलिताभद्रयोः स्वरूपम्      | ....   | "            | ३११ उपमाया दशभेदास्तदुदाहर-      |        |              |
| २८० क्रमेणोदाहरणानि             | ....   | १५६          | णानि                             | ....   | "            |
| २८१ अथालंकारास्तत्रालंकारस्य    |        |              | ३१२ रूपकलक्षणं तद्देवादाहरणा-    |        |              |
| सामान्यविशेषलक्षणे              | ....   | "            | नि च                             | ....   | १७६          |
| २८२ चित्रादयोऽप्तवर्णकाराः      | ....   | "            | ३१३ उत्पेक्षालक्षणं तदुदाहरणानि  | १७७    |              |
| २८३ चित्रलक्षणं चित्रभेदाश्र    | ....   | "            | ३१४ समासोकिस्तदुदाहरणानि च       | १७८    |              |
| २८४ सङ्गवन्धरचना                | ....   | १५७          | ३१५ अपन्हुतिलक्षणं तदुदाहरणानि च | "      |              |
| २८५ पश्चवन्धमुरजवन्धयो रचना     | १५८    |              | ३१६ समाहितम्                     | ....   | "            |
| २८६ सर्वतोम्भद्ररचना            | ....   | १५९          | ३१७ स्वभावालंकारः                | ....   | "            |
| २८७ वकोक्तिलक्षणं तदुदाहरणश्च   | "      |              | ३१८ विरोधः। अयमेव विरोधा-        |        |              |
| २८८ अनुप्रासलक्षणं तदुदाहरणश्च  | "      |              | भासः                             | ....   | "            |
| २८९ गूढस्वरूपं तद्देवाश्र       | ....   | १६०          | ३१९ सारालंकारः                   | ....   | "            |
| ९० शेषलक्षणं वर्णादितद्देवाश्र  | १६३    |              | ३२० दीपकलक्षणं तद्देवाश्र        | ....   | "            |
| ९१ वर्णश्चेषः                   | ....   | "            | ३२१ माटादीपकम्                   | ....   | १७९          |
| ९२ पद्मश्चेषः                   | ....   | "            | ३२२ सहोक्तिः                     | ....   | "            |

# अनुक्रमणिका ।

७

| क्रमांकः | विषयः                                     | पृष्ठांकः | क्रमांकः | विषयः                         | पृष्ठांकः |
|----------|---|-----------|----------|-------------------------------|-----------|
| ३२३      | अन्यदेशत्वम्                              | १७९       | ३५३      | व्रय उदयाः                    | २०२       |
| ३२४      | विशेषोक्तिः                               | ....      | ३५४      | उपायचतुष्टयम्                 | "         |
| ३२५      | विभावना                                   | ....      | ३५५      | सेनाहृचतुष्टयम्               | "         |
| ३२६      | व्यतिरेकाळंकारः                           | ....      | ३५६      | राजो छस्मीपातिकरणि            | "         |
| ३२७      | आतेपः                                     | १८०       | ३५७      | सन्मार्गेव गन्तव्यम्          | २०३       |
| ३२८      | काव्यपकाशरीत्या<br>वृत्तिसापनम्           | ....      | ३५८      | देवतानां देवतात्वे हेतवः      | "         |
| ३२९      | दक्षणाव्यञ्चनयोर्भेदकान्त-<br>रम्         | ....      | ३५९      | वाङ्मायुर्ये गुणः             | "         |
| ३३०      | संक्षेपतः समस्यापूरणविधिः                 | १८२       | ३६०      | उद्योगप्रसंसा                 | "         |
| ३३१      | नीतिशाखे तद्देशाश्र                       | १८६       | ३६१      | हीनताकरणि                     | २०४       |
| ३३२      | संक्षेपतो राजनीतिकथनम्                    | १९२       | ३६२      | हास्यनिषेधः                   | "         |
| ३३३      | मन्त्रगुप्तिपकारस्तत्राव्यापि-<br>काकथनम् | ....      | ३६३      | धनमासी वाणिज्यपशंसा           | "         |
| ३३४      | दुम्पनिराजस्यानिष्टफलम्                   | १९६       | ३६४      | समयोक्तवाणीमशंसा              | "         |
| ३३५      | राजो दुर्गंस्यात्यन्तवद्यक्ता             | १९८       | ३६५      | पूर्यमाणान्यपि अपूर्णानि सप्त | "         |
| ३३६      | राजगुणाः                                  | ....      | ३६६      | बुद्धिमता अपकाइयानि           | "         |
| ३३७      | राजनिष्ठानि                               | ....      | ३६७      | त्यागाहृवस्तूनि               | "         |
| ३३८      | कुराजलक्षणम्                              | १९९       | ३६८      | वासानहंस्यलानि                | २०६       |
| ३३९      | स्वीयराज्यादाता पाखण्डिनो                 | ....      | ३६९      | वाल्लक्षणम्                   | "         |
| ३४०      | पृथग्ननदोपाः                              | ....      | ३७०      | ओवियलक्षणम्                   | "         |
| ३४१      | पञ्चनिवन्मृताः                            | ....      | ३७१      | मेत्रीभद्रस्य हेतवः           | "         |
| ३४२      | केवलनृपस्य निषेधः                         | ....      | ३७२      | पद्म लुताहेतवः                | "         |
| ३४३      | सभायां गमने कटम्                          | २००       | ३७३      | मिवप्रसंसा                    | "         |
| ३४४      | मुद्दे मरणमशंसा                           | ....      | ३७४      | मेत्रीकरणयोग्यलक्षणम्         | २०७       |
| ३४५      | पानादिवर्जयपदार्थाः                       | ....      | ३७५      | जीवन्मृतकथनम्                 | "         |
| ३४६      | संहातिसामव्यंद्र                          | ....      | ३७६      | अन्यरेतोनातलक्षणम्            | "         |
| ३४७      | देशकाटादिविन्तनम्                         | ....      | ३७७      | शीटप्रसंसा                    | "         |
| ३४८      | प्रव्ययस्यानानि                           | ....      | ३७८      | वधमापमापमोत्तममव्यलक्षणम्     | "         |
| ३४९      | राज्यस्वरूपम्                             | ....      | ३७९      | पितृसमाः                      | २०८       |
| ३५०      | भूषानो रहगुणाः                            | ....      | ३८०      | सामान्यस्वीकारः               | "         |
| ३५१      | शक्तिप्रसम्                               | ....      | ३८१      | शयनविचारः                     | "         |
| ३५२      | शक्तिप्रसम्                               | ....      | ३८२      | आविते दाननिषेधः               | "         |
|          |   | ३८३       | ३८३      | शास्त्रगावमानकरणनिषेधः        | २०९       |
|          |   | ३८४       | ३८४      | दमनिषेधः                      | "         |

# मातृकाविलासस्य-अनुक्रमणिका ।

| पृष्ठाङ्कः | विषयः                          | पृष्ठाङ्कः | क्रमांकः | विषयः   | पृष्ठाङ्कः  |
|------------|--------------------------------|------------|----------|---|-------------|
| ४८६        | खीनितस्य दुष्परिणामः           | .... २०९   | ४१५      | आरम्भवादादिपक्षत्रयविचारः   | २१३         |
| ४८७        | वाक्पारुप्यनिषेधः              | .... "     | ४१६      | तार्किकाणां मतम्  | .... "      |
| ४८८        | पैशुन्यनिषेधः                  | .... "     | ४१७      | मीमांसकानां मतम्  | .... "      |
| ४८९        | यात्रानिषेधः                   | .... "     | ४१८      | अद्वैतवैष्णवानां मतम्   | .... "      |
| ४९०        | निर्दोषभक्त्यागनिषेधः          | .... "     | ४१९      | ब्रह्मवादिनां सर्वेषां प्रस्थान-<br>कर्तृणां च मतम्   | .... २१४    |
| ४९१        | इन्द्रियनयोपायः                | .... "     | ४२०      | भागवतधर्मस्यैव उपादेयता-<br>कथनम्   | .... .... " |
| ४९२        | नास्तिकतानिषेधः                | .... "     | ४२१      | वैष्णवानां साक्षादेव परमात्मा<br>गम्योऽन्येषां तु परंपरया ग<br>म्य इत्यादिकथनम्                   | .... "      |
| ४९३        | पूज्यापमाननिषेधः               | .... "     | ४२२      | मातृकाया एव सर्वोत्पत्तिरि-<br>ति कथनम्   | .... २१५    |
| ४९४        | नद्यादीनां विश्वासनिषेधः       | .... २१०   | ४२३      | तत्र ममाणविचारः   | .... .... " |
| ४९५        | अभिनारेच्छानिषेधः              | .... "     | ४२४      | सूर्योत्पत्तिमिकारकथनम्   | .... २१६    |
| ४९६        | विष्णुस्मरणविधिः               | .... ....  | ४२५      | भगवता तपोयोगचलाद्यासा-<br>द्यवतारान् धृत्वा मातृकात<br>एव सर्ववेदशाखाण्याविभां-<br>वितानीति कथनम् | .... २१७    |
| ४९७        | वैष्णवे मार्गे संदेहकरणवर्जनम् | "          | ४२६      | मातृकामाहात्म्यकथनम्  | .... "      |
| ४९८        | जरादेतवः                       | .... ....  | ४२७      | ग्रन्थोपसंहारः  | .... .... " |
| ४९९        | चत्वारि मस्तकशूलानि            | ....       | ४२८      | तत्रोत्तमः सिद्धमित्येतदर्थक-<br>यनम्   | .... २१८    |
| ५००        | चैरिकरा गुणाः                  | .... ....  | ४२९      | सर्वत्र नारायण एव ध्येयो ने-<br>यत्वेति प्रमाणपूर्वककथनम्   | .... "      |
| ५०१        | अपण्डितलक्षणम्                 | .... ....  | ४३०      | सर्वं त्यस्त्वा ग्रन्थार्थेन रतिः<br>कार्येति कथनम्   | .... "      |
| ५०२        | निरपेक्षयम्                    | .... २११   | ४३१      | गमास्तिप्रयामः  | .... २१९    |
| ५०३        | त्यागादीः                      | .... ....  | ४३२      | राधाहृष्णमीतिविषयकः   | .... "      |
| ५०४        | पष्टि. उक्षणम्                 | .... ....  | ४३३      | ग्रहणदारयन्त्रः   | .... "      |
| ५०५        | पुण्यदयकथनम्                   | .... ....  | ४३४      | प्रयत्नतुं चांकम्यानादिनिर्देशः   | .... २२०    |
| ५०६        | सुभाषितसंग्रहः                 | .... २१२   |          |   |             |
| ५०७        | ब्रह्मदायादिपक्षनम्            | .... "     |          |   |             |
| ५०८        | सुक्षेत्रं सांघारक्षण्यम्      | .... ....  |          |   |             |
| ५०९        | दोग्धायसारकथनम्                | .... "     |          |   |             |
| ५१०        | सामुद्रदायसारकथनम्             | .... २१३   |          |   |             |
| ५११        | संज्ञरात्रायसारकथनम्           | .... "     |          |   |             |
| ५१२        | सिद्धान्तस्वदायविचारकथनम्      | .... "     |          |   |             |
| ५१३        | सान्नामसायविचारकथनम्           | .... "     |          |   |             |
| ५१४        | स्वरूपस्वदायविचारः             | .... "     |          |   |             |
| ५१५        | स्वरूपस्वदिविषयः               | .... ....  |          |   |             |

इति मातृकाविलासानुक्रमणिका समाप्ता ॥

श्रीः ।

# अथ मातृकाविलासः प्रारम्भते ।

ॐ श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीकृष्णं राधिकानाथं वृन्दावननिकुञ्जगम् ॥  
वल्लभीगणसंवीतमात्रये सर्वकारणम् ॥ १ ॥  
ओंस्वस्ति श्रीगणेशाय नमऽत्यस्यव्याकृतिम् ॥  
श्रीवंशीधरशर्माहं करोमि विदुपां सुदे ॥ २ ॥

अथ सर्वशास्त्रारंभ इयमेव दशाक्षरीविद्या स्मर्यते तत्कथमन्येषां  
श्रीमहाविष्णवादीनां स्मरणस्यापि 'मंगलानाथं मङ्गलम्' इत्यादि-  
वाच्यमेवं गलत्यापि मंगलत्वात्तत्कथव्र स्मर्यतं इति चेदेवं देवं वधेयम्।  
गमेव दशाक्षरां स्मृतायां सर्वदेवस्यरणसंभवादियमेव स्मर्यां।  
स्या दशाक्षरां सर्वदेवतानां मूलमंत्रत्वादप्यादौ जपो न्या-  
मूलमंत्रलक्षणस्य गरुडोक्तस्याव तत्त्वात् । नथाहि प्रणवा-  
तंच चतुर्थ्यतं च सत्तम् ॥ देवतायाः स्वकं नाम मूलमंत्रः  
तः' इति । देवपूजायां जपस्त्वपूजाया एव व्रेष्टुं यज्ञानां  
स्मि' इति । श्रीमुरुसोक्ते: कथमत्र सर्वदेवतान्त्मरप्रणमिति चे-  
ग्नीह । तथाहि कार्यारंभे गणेशाथ पूजनीयः प्रयत्नः ।  
तेरत्तस्यवादिपूज्यत्वं विभनाथत्वेन विभवारकत्वात् ।

दुःखप्रदत्वेनेति गणा विग्राः । 'समृहे भगवे विघ्ने प्रमर्थोद्विय-  
देवते ॥ यमसेन्ये स्तवाहेंपु पापंदे च गणः स्वृतः' इत्यनेकाध्य-  
पानिवाग्विलासे । गण सख्याने धातोः कर्मण्यप्रन्ययः । इंष्टे  
उपद्रववनाशकत्वेन धोतत इतीशः इदं ऐश्वर्येन्द्रः कर्तरंगगुपथान्  
कः । 'इशः स्वामिनि शंकरे' इति वामनः । गगनां ति-

# मातृकाविलासस्य-अनुक्रमणिका ।

| क्रमांकः | विषयः                          | पृष्ठांकः | क्रमांकः | विषयः                            | पृष्ठा-                |
|----------|--------------------------------|-----------|----------|----------------------------------|------------------------|
| ३८६      | खीनितस्य दुष्परिणामः           | .... २०९  | ४१५      | आरम्भवादादिपक्षत्रयविचारः        | २                      |
| ३८७      | वाक्पारुप्यनिषेधः              | .... "    | ४१६      | तार्किकाणां मतम्                 | ....                   |
| ३८८      | पैशुन्यनिषेधः                  | .... "    | ४१७      | मीमांसकानां मतम्                 | ....                   |
| ३८९      | याज्ञानिषेधः                   | .... "    | ४१८      | अद्वैतवैष्णवानां मतम्            | ....                   |
| ३९०      | निर्दोषभक्तत्यागनिषेधः         | .... "    | ४१९      | ब्रह्मवादिनां सर्वेषां प्रस्थान- |                        |
| ३९१      | इन्द्रियज्ञोपायः               | .... "    | "        | कर्त्तणां च मतम्                 | ....                   |
| ३९२      | नास्तिकतानिषेधः                | .... "    | ४२०      | भागवतधर्मस्यैव उपादेयता-         |                        |
| ३९३      | पूज्यापमाननिषेधः               | .... "    | "        | कथनम्                            | .... ....              |
| ३९४      | नद्यादीनां विश्वासनिषेधः       | .... २१०  | ४२१      | वैष्णवानां साक्षादेव परमात्मा    |                        |
| ३९५      | अभिचारेच्छानिषेधः              | .... "    | "        | गम्योऽन्येषां तु परंपरया ग       |                        |
| ३९६      | विष्णुस्मरणविधिः               | .... .... | "        | म्य इत्यादिकथनम्                 | ....                   |
| ३९७      | वैष्णवे मार्गे संदेहकरणवर्जनम् | "         | ४२२      | मातृकाया एव सर्वोत्तमिरि-        |                        |
| ३९८      | जराहेतवः                       | .... .... | "        | ति कथनम्                         | ....                   |
| ३९९      | चत्वारि मस्तकशूलानि            | .... "    | ४२३      | तत्र प्रमाणविचारः                | ....                   |
| ४००      | वैरिकरा गुणाः                  | .... "    | ४२४      | सूर्योत्पत्तिप्रकारकथनम्         | ....                   |
| ४०१      | अपण्डितलक्षणम्                 | .... "    | "        | ४२५                              | भगवता तपोयोगवलाङ्गासा- |
| ४०२      | निरर्थकत्रयम्                  | .... २११  | "        | द्यवतारान् धृत्वा मातृकात        |                        |
| ४०३      | त्यागार्हाः                    | .... .... | "        | एव सर्ववेदशाखाण्याविर्भा-        |                        |
| ४०४      | पण्डिलक्षणम्                   | .... .... | "        | वितानीति कथनम्                   | ....                   |
| ४०५      | पुरुषद्वयकथनम्                 | .... .... | ४२६      | मातृकामाहात्म्यकथनम्             | ....                   |
| ४०६      | सुभाषितसंग्रहः                 | .... २१२  | ४२७      | ग्रन्थोपसंहारः                   | ....                   |
| ४०७      | वशशास्त्रादिकथनम्              | .... "    | ४२८      | तत्रोत्तमःसिद्धमित्येतदर्थक-     |                        |
| ४०८      | संक्षेपम् सांख्यशास्त्रपति-    |           | "        | यनम्                             | .... ....              |
|          | पादनम्                         | .... .... | ४२९      | सर्वत्र नारायण एव ध्येयो वे-     |                        |
| ४०९      | योगशास्त्रसारकथनम्             | .... "    | "        | द्यत्वेति प्रमाणपूर्वककथनम्      |                        |
| ४१०      | पाशुपतशास्त्रसारकथनम्          | .... २१३  | ४३०      | सर्वं त्यक्त्वा ब्रह्मण्यैव रतिः |                        |
| ४११      | नैन्नवपश्चरात्रसारकथनम्        | .... "    | "        | कार्येति कथनम्                   | ....                   |
| ४१२      | नैन्नवमन्त्यशास्त्रविचारकथनम्  | .... "    | ४३१      | समाप्तिपद्यम्                    | ....                   |
| ४१३      | यामागमशास्त्रविचारः            | .... "    | ४३२      | राधाकृष्णप्रतिविष्यकः            |                        |
| ४१४      | दग्धानभेदविचारः                | .... "    | "        | स्वकृतहारवन्धः                   | ....                   |
|          |                                |           | ४३३      | श्रीपक्तुर्वासस्थानादिरूपः       | २                      |

इति मातृकाविलासानुक्रमणिका समाप्ता ॥

थीः ।

# अथ मातृकाविलासः प्रारम्भते ।

ॐ श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीकृष्णं राधिकानाथं वृन्दावननिकुञ्जगम् ॥  
वल्लभीगणसंबीतमात्रये सर्वकारणम् ॥ १ ॥  
ओस्वस्ति श्रीगणेशायनमङ्गल्यस्यव्याकृतिम् ॥

श्रीवंशीधरशर्माहं करोमि विदुपां मुदे ॥ २ ॥

अथ सर्वशास्त्रारंभ इयमेव दशाक्षरीविद्या स्मर्यते तत्कथमन्येषां  
श्रीमहाविष्णवादीनां स्मरणस्यापि 'मंगलानां च मङ्गलम्' इत्यादि-  
वाक्यमैर्मर्गलस्यापि मंगलत्वात्कथन्न स्मर्यते इति चेदनेदमवधेयम्।  
अस्यामेव दशाक्षर्यां स्मृतायां सर्वदेवस्मरणसंभवादियमेव स्मर्यां।  
किंचास्या दशाक्षर्याः सर्वदेवतानां मूलमंत्रत्वादप्यादौ जपो न्या-  
यः। मूलमंत्रलक्षणस्य गरुडोक्तस्यात्र सत्त्वात् । तथाहि 'प्रणवा-  
देनमात्रं च चतुर्थ्यं च सत्तम् ॥ देवतायाः स्वकं नाम मूलमंत्रः  
कीर्तिंतः' इति । देवपूजायां जपरूपपूजाया एव श्रैष्टये 'यज्ञानां  
पवज्ञोस्मि' इति । श्रीमुखोक्तेः कथमत्र सर्वदेवतास्मरणमिति चे-  
तदर्शयतीह । तथाहि 'कार्यारंभे गणेशात् पूजनीयः प्रयत्नतः;  
इति स्मृतेस्तस्यैवादिपूज्यत्वं विघ्नात्मकत्वात् ।  
श्रीगणेशाय नमः ॥ नमआदियोगे चतुर्थीं सर्वत्र वोध्या । गण्यंते  
इः सप्रदत्त्वेनेति गणा विभ्राः 'समृहे भग्ने विभ्रे प्रमयोऽद्वय-  
वते ॥ यमसेन्ये स्तनाहेषु पार्पदे च गणः स्मृतः' इत्यनेकार्थ-  
गणवाग्विलासे । गण संख्याने धातोः कर्मण्यप्रत्ययः । ईर्षे  
द्रवनाशकत्वेन वोतत इर्ताशः ईश ऐश्वर्येऽतः कर्तरोगुपथात्  
। 'ईशः स्वामिनि शंकरे' इति वामनः । गणानां वि-

ध्रानां प्रमथानां वेशः स्वामी गणेशो हेरंवः 'रुद्रे विनायके विष्णो  
विष्वक्सेने विधातरि । मुख्याधिष्ठातृसंन्येषु गणेशः परिकीर्तिः'  
इत्यप्यनेकार्थध्वनिवाग्विलासे । त्रिया कीर्त्या दीप्त्या ऋद्धिसिद्धि-  
भ्यां वा सहितो गणेशः श्रीगणेशस्तस्मै तथा 'ऋद्धिश्रीकीर्तिर्दी-  
स्याशीर्गंगासु श्रीरितीरितः' इत्यपि तत्रैव । स्वस्त्यस्तु नमस्कर्तु-  
रिति शेषः । ओमित्यंगीकारे ब्रह्मणि चेत्यव्ययपाठात् । एतत्स्वं  
कार्यादावंगीकार्यमिति भावः । 'अनाराध्य गणाव्यक्षं यत्कर्म क्रि-  
यते नरे: ॥ तत्र सिद्धिमवाप्नोति ह्यत आदौ तमर्चयेत्' इति  
पुराणात् । यद्वा कथंभूताय श्रीगणेशाय ओम् कोर्थः ब्रह्मरूपि-  
षे । अव्ययत्वादेव चतुर्थ्या लुक् सत्यपि लुकि विभक्त्यर्थानपाय-  
स्योपकृष्णं देहीत्यादिप्रयोगे दर्शनादव्ययस्य तत्तद्विभक्त्यर्थान्तवि-  
शेषणत्वे न दोष इत्यवधेयमत्र । तथाच श्रुतिः 'नमस्ते गणपत-  
ये त्वेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि' इति । अत्र विशेष्यसंबंधत्वादन्ययोग-  
व्यवच्छेदकेनैवकारेण पार्थ एव धनुर्धर इत्यत्र पार्थादन्यत्र धनुर्धर-  
त्वस्येव गणपतेरन्यत्र साक्षाद्ब्रह्मत्वस्य योगो व्यवच्छिद्यते । अतः  
श्रेयस्कामैः सर्वैरपि स एवाराध्यस्तत्पूजां विनाऽन्यपूजाया वैयर्थ्य-  
स्मरणेन फलजनकत्वायोगात् 'अवश्यापेक्षितानपेक्षितं समर्प-  
णीयम्' इति न्यायेन । तदाराधनस्यावश्यकत्वात् कृते च तस्मि-  
न् 'विद्यार्थी लभते विद्या धनार्थी लभते धनम् ॥ पुत्रार्थी लभते  
पुत्रं मोक्षार्थी परमं पदम्' इत्यादिवचनेभ्यः सर्वैरुलाभसंभवे 'अन-  
धीते महाभाष्ये व्यर्था स्यात्पदमंजरी । अधीतेषि महाभाष्ये  
व्यर्था स्यात्पदमंजरी' इति न्यायेनान्याराधने प्रयोजनाभावात् ।  
सूर्योद्याराधनफलारोग्यादिमोक्षांतकथनानंतरम् 'सर्वमिच्छे-  
द्रणाधिपात्' इति स्मरणमप्यत्र मानम् । तस्मादेव  
ब्रह्माद्युत्पत्तिस्तत एव तेषां सुपृच्यादिसामर्थ्यलाभश्च । अथ च ग-  
णपतेरस्तत्वेन वर्णनमुपासनार्थं वास्तवाभेदवोधनार्थश्च न चैताव-



महाकविप्रयागोच्च तत्संगच्छत एवेति । श्रीविष्णोः सर्वदेवा-  
 धिपत्वेनोत्कृष्टत्वात्तपक्षेऽन्योप्यर्थः । ॐ ज्ञानं तदेव स्वं धनं  
 येषां ते ॐस्वा योगिनः ‘ज्ञानं हि योगिनां धनम्’ इत्युक्तेः । ‘महेशो  
 ब्रह्मणि विष्णो त्रिगुण्यां प्रणवेषि च ॥ ओंकारः शब्द्यते शुद्धौ  
 ज्ञाने त्रयां च कोविदैः’ इत्यनेकार्थध्वनिवागिविलासोक्तेः । ‘स्वः  
 स्वीयात्मधनेषु च’ इति हलायुधः । ओंस्वा ज्ञानयोगिनस्तैः स्ती-  
 र्यते ध्यायत इति ॐस्वस्तिर्विष्णुः स्तृभाच्छादन इत्यस्मादौषादि-  
 को डिप्रत्ययस्ततपृष्ठिलोपे रूपसिद्धेः । धातृनामनेकार्थत्वाद्याना-  
 र्थतापि स्तृणतेर्युक्तैव । ‘धातवश्चोपसर्गात्म निपाताश्चेति ते त्रयः ॥  
 अनेकार्थाः स्मृताः सर्वे पाठस्तेषां निदर्शनम्’ इति वैयाकरणराज्ञा-  
 तात् । अत एवोक्तं ‘योगिभिर्ध्यानगम्यम्’ ध्यायांति यं योगिन् इति च ।  
 श्रिया सर्वोत्कृष्टकीर्त्या गण्यते संख्यायते स्तूयते वेति श्रीगणः  
 ‘सर्वोत्कृष्टा यस्य कीर्तिस्स श्रीगण उदाहृतः’ इति निरुक्तेः । नहि  
 विष्णोरधिका कस्यचिदपि कीर्तिरस्ति ‘न त्वत्समोस्त्यभ्यधिकः  
 कुतोन्यः’ इति श्रीगीतास्वर्जुनोक्तेः । स चासारीशः सर्वनियंता  
 चेति श्रीगणेशः । ‘सर्वस्येशानः सर्वस्य वशी च’ इति श्रुतेः ।  
 पुनरांस्वस्तिशब्देन कर्मधारयः । ओंस्वस्तिश्चासौ श्रीगणेशश्चेति  
 तथा । कोर्थः, विष्णवे नमः ‘विष्णुरेव परं ब्रह्म’ इति स्कांदोक्तेः ।  
 परब्रह्मज्ञानस्य परमानन्दहेतुत्वात्पुनर्विष्णुपक्ष एव व्याख्यायते ।  
 ‘यदुवंशेवतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः’ इति श्रीदशमोक्ते-  
 विष्णुशब्दः श्रीकृष्ण एव मुख्यया वृच्या वर्तते । अत एवामरसिहेन  
 ज्ञेन प्रतीपक्षीभृतेनापि विष्णुनामकथनोत्तरं वसुदेवोस्य जनकः  
 इत्युत्तमा तस्यैव विष्णुत्वं व्याख्यातम् । अतएव श्रीव्यासदेवेनाप्य-  
 क्तम् ‘ते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्’ इति ॥ ॐ  
 ‘विष्णुशब्दवाच्यः कृष्णस्तेन स्वस्ति कल्याणं यस्य तदोंस्वस्ति



एप साक्षात्पुरुषः पुराणः इति पार्वतीं प्रति स्वयं शिवेनाप्तमस्कंधे  
मोदिन्युपाख्यान उक्तत्वात् । 'तव वरद् वरांग्रावाशिषेदाशिलार्थं  
यदि रचिताधियं माविद्यलोकोपविद्धम्' इति दक्षोपाख्याने च । 'अतो  
महेशोपि विहाय भेदवृद्धिं सदा सेवत एव विष्णुम्' इति विद्धमोद-  
तरंगिण्यां चिरंजीवभट्टोक्तश्च । गणाः प्रमथास्तेपामीशो गणेऽः 'गणः  
संघे च प्रमथे' इत्याभिधानात् । ॐ स्वस्ति श्रीशासो गणेऽश्चेति तथा  
शिवाय नमः इत्यर्थः । नन्वयमपि पक्षो विष्णोरेव ॐ स्वास्ति श्रीयती-  
त्यनया निरुत्तया विष्णोः प्राधान्यस्य शिवस्य च सेवकत्वस्योक्त-  
त्वात् । यस्य पक्षो यत्र वर्ण्यते तत्र तस्यैव महत्त्वं वर्ण्यतेऽतो मृडम-  
इत्त्वसृचकोऽपरः पक्षोत्र विरच्यते । ओमा शुद्धया स्वस्ति कल्याणं ये-  
पांते ॐ स्वस्तयः विप्राः 'शुद्धया त्राज्ञणतावृद्धिरशुद्धया शुद्धता भवे-  
त्' इत्यादिपुराणात् । तैः श्रीयते सेव्यत इति ॐ स्वस्ति श्रीर्महादेवः 'तं  
हि भगवन्देवेषु त्राज्ञणो हंमनुप्येषु त्राज्ञणः; त्राज्ञणो हि त्राज्ञणमुपधा-  
वति' इति जावालोपनिपदुक्तेः , 'शिवो विप्रो हरिः क्षत्री' इत्यादि-  
पराशरपुराणोत्ते श्वेतश्चस्य 'त्राज्ञणदेवत्वाद्वाज्ञणसेव्यत्वमस्तीति । ई  
लक्ष्मीं गच्छतीतीगो विष्णुः 'लक्ष्मीरीकार उच्यते' इत्येकाक्ष-  
रात् । ईगेन नम्यत इतीगणः शिवः । निपातनामस्य णः प्रत्य-  
यश्वात्र डः । स चासावीशश्चेतिगणेऽः । यदा ॐ ज्ञानं-  
सूते इति ॐ सूर्वेदः 'वेदो वै ज्ञानकारणम्' इत्युक्तेः । ॐ  
सुवो वेदस्यास्तिराविर्भावो यस्मात्स अस्वस्तिर्महादेवः 'त्वं  
शब्दयोनिर्जगदादिरात्मा' इति 'सांख्यात्मनः शास्त्रकृतस्तवेक्षा'  
इति चाप्तमस्कंधे महादेवं प्रति लोकपालोक्तेः 'शास्त्रयोनित्वात्'  
इति सूत्राच्च । श्रियं गणयति भार्यात्वेनेति श्रीगणो विष्णुस्तस्ये-  
शः श्रीगणेऽः 'सदाहं शंकरं सेवे वैकुण्ठेशोपि भोः सुराः' इति पा-  
द्मात् । औंस्वस्ति श्रीशासो श्रीगणेऽश्चेति ॐ स्वस्ति श्रीगणेऽशस्तस्मै



नम् । सा चानेकविधा, मंचाः क्रोशांति, शोणो धावतीत्याद्युदाहरणे-  
रुदाहता अथेषु । यथेह मंचपदं मंचस्थे, शोणपदं रक्तवर्णवत्यथा-  
दौ लाक्षणिकं तथात्रापि स्वस्तीति स्वस्तिकर्त्तरि । लक्षणावीजं त्वन्-  
यानुपपत्तिः कचित्कचिच्च तात्पर्यानुपपत्तिरिह च तात्पर्यानुपप-  
त्तिरेवेत्यलमतिप्रसंगेन इति चंद्रपक्षः ॥ अथोऽकारस्य 'ओंकारो वै सर्वा-  
वाग्' इत्यादिश्चुतेः सर्ववाग्रूपत्वात्तद्व्यानस्य च 'कामदं मोक्षदं चैव'  
इत्युक्तेः सर्वाभीष्टेहेतुत्वाच्चादौ तदेवाह । ओं स्वस्ति श्रीगणे शा-  
य नमः । अत्र पद् पदच्छेदाः कार्याः । हे श, कोर्थः, हे वरेण्य,  
'शश्व शोभावरेण्ययोः' इति वामनः । ननु हेशब्दः संबुद्धिद्ये-  
तको भवत्यत्र तदभावात्कथं हे शेत्युक्तम् । तत्रोच्यते । 'हे  
शब्देन विनापि स्यात्कचिदंतेऽपि हेपदम्' ॥ यथा ए  
प्रसीद त्वं राम हे त्वां भजाम्यहम्, इति प्रवोधचंद्रिको  
क्तेहेशब्देन विनापि संबुद्धिर्न विरुद्धेति । अथ प्रकृतम्, त्वमो  
कोर्थः उँकारमक्षरं ब्रह्मस्वरूपमय ध्याय । अय गतावित्यस्य ध-  
त्रूनामनेकार्थत्वाद्व्यानार्थतापि । 'अनुक्तमप्यूहति पंडितो जन-  
इत्यादिप्रयोगदर्शनात् ' अनुदात्तेत्वलक्षणमात्मनेपदमानित्यम्  
इति वहुधा प्रपञ्चितं शान्दिकैरतोऽयतेः परस्मैपदप्रयोगोपि :  
विरुद्ध इति । नन्वोऽकारस्य ध्यानं न कोपि करोतीति चेत्तत्राह  
'उँकारं विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः' ॥ कामदं मोक्षदं चैव  
उँकाराय नमोनमः ॥ 'इति मंत्रात्तद्व्यानं तु योगिनोपि कुर्वत्यन्ये  
पां तु का कथेति भावः । किंभूतम् उँनमः । सर्वोत्कृष्टत्वेन नम  
स्त्काराहस्त । एम् प्रहत्वे इत्यस्मादौणादिकोऽसुप्रत्ययः । सर्वोत्कृ-  
ष्टत्वं प्रण नस्य ब्रह्मविद्योपनिपदि व्याख्यातम् ' उमित्येकाक्ष-  
रं ब्रह्म युक्तं ॥ ब्रह्मवादिभिः ॥ शरीरं तस्य वक्ष्यामि स्थानं कार-  
न्त ॥ ॥ तत्र स्तु देवास्त्रयः प्रोक्ता लोका वेदास्त्रयोग्रयः । तिस्रे



काशंते महात्मनः’ इति थेताथ्तरशुतेश्च गुरुभक्तिजन्यत्वादा-  
दौ गुरुनतिरेव कार्यात्मो गुरुपक्षेषि दशाकर्त्तरां योजयति अ-  
ज्ञानं तदेव स्वं धनमांस्वं तेन ज्ञानधनेन स्तम्भाति कर्मप्रवृत्त्या  
संसारे भ्रमन्तं शिष्यं रुणद्वीत्योऽस्वस्तिगुरुः। ‘गिरतीर्ह पाप्मानम्’  
इति श्रुतिप्रतिपादितो गुरुपदार्थेनिन ध्वनितः। स्तंभु रोधनेऽस्मा-  
त्कैयादिकादौणादिको डिग्रत्ययः कर्तरीति । अत्र दृष्टांतः  
यथा कृतापराधं नरं गृहीत्वा राजपाशें गच्छत्वं तत्प्रियः कथि-  
द्धनं दत्वा तं स्वं मोचयति एवं गुरुरपि ज्ञानधनं दत्वा कर्मणः  
सकाशान्मोचयतीति ध्येयः। नहि गुरुपदेशं विना संसारः शाम्यती-  
ति भावः । श्रीर्लङ्घ्मीस्तां गच्छति प्राप्नोतीति श्रीगो विष्णुस्तं  
नमतीति श्रीगणः। साधनमस्य शिवपक्षे वर्णितम् । ओऽस्वस्तिश्रीग-  
णपदाभ्यामत्र ‘ओत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्’ इति श्रुत्यथोपि ध्वनितः । ओऽ-  
स्वस्तिश्वासौ श्रीगणश्चेति ओऽस्वस्तिश्रीगणः, पुनरीशपदेन  
कर्मधारयः पूर्ववत् । ‘किञ्च आचार्यवान्पुरुषो वेद’ इति श्रुतेभर्गव-  
त्स्वरूपज्ञानमापि गुरुप्रसादादेव भवतीत्यलं विस्तरेणेति गुरुपक्षः॥  
इद्रस्य सर्वदेवराजत्वात्सोऽपि शास्त्रादौ ध्येय एवेत्यत इद्रपक्षेष्यस्य  
योजनामाह । ओमा विष्णुना वामनरूपेण स्वस्ति कल्याणं यस्य  
स ओऽस्वस्तिरिन्द्रःश्रिया समेधिता गणाः श्रीगणा देवाः श्रिया समे-  
धिताः सर्वे उपारमत विग्रहात्’ इति ब्रह्मप्रेपितनारदस्य देवा-  
सुरसंग्रामे देवान्प्रत्युक्तेः । अत्र मध्यमपदलोपी समाप्तः । तेषामी-  
शः श्रीगणेश ओऽस्वस्तिश्वासौ श्रीगणेश ओऽस्वस्तिश्रीगणेशस्तस्मै  
इद्राय नमः । अथ शेषस्य सर्वाधारत्वात्सर्वसप्तगणमु-  
ख्यत्वेन सप्तादिभीतिवारणाय तमत्र नमस्करोति । शाय नमः ।  
कोर्यः’ शेषाय नमः । ‘शं वदंति बुधाः शेषम्’ इत्येकाक्षरात् ।  
किंभूताय शाय ओऽस्वस्तिश्रीगणे । ओपदेन सत्वादिगुणव्रयमु-



माना रणेविका । त एव सद्यः संभूता गणाः शतसहस्रशः ॥ इतुले  
 गणा निःशासोद्भूतास्तेपामीशा तस्यै नमः । अस्याप॑त्वादाद्यादा-  
 गमाद्यभावेन पुस्त्वम् । क्षपि॒रत्र वेदः ‘वैदिकत्वं चास्य सर्ववाइ-  
 यादित्वेनापौरुपेयत्वादिति‘ अपौरुपेयं वाक्यं वेदः ॥ इति पूर्वमीमांसा-  
 यां वेदलक्षणोक्तेः । नहि केनचित्पुरुपेणैतद्विचित्तमनादित इत्थमेवेयं  
 दशाक्षरी विद्योति प्रसिद्धेरिते डुर्गापक्षः ॥ अथ वाच्यधीनमिदं जग-  
 त्वं इत्यादिपुराणात्सर्वचेष्टाहेतुत्वाद्वायुमप्यत्र नमस्करोति । ओम् ॥  
 सत्वरजस्तमोभिः सुषुभस्ति भवनं स्थित्युत्पत्तिसंहतिरूपं य  
 तद्वस्त्रांडमोस्वस्ति तस्य श्रीः कल्याणं येन स औंस्वस्ति श्रीर्वार्युः ॥  
 वायो सर्वत्रक्षांडस्वस्तिकृत्याणदः सदा । तदधीनमिदं सर्वं जगत  
 श्वेषितं विभो ॥ अतीव कडमलो देहस्त्वत्संयोगात्परः शुचिः ।  
 त्वत्यक्तस्तु पवित्रोपि विप्रदेहोऽग्निर्भवेत् ॥ पवित्राणां पवित्रत्वं  
 मंगलानां च मंगलम् इत्यादिसंहितोक्तेः । गण्यंते ज्ञानकर्त्रोपकारक-  
 त्वेनेति गणा इंद्रियाणि तेपामीशः प्रवृत्तिहेतुत्वात्स्वामी गणेशः ॥  
 प्राणवायुं विना किमपि कर्तुंमिद्रियगणैर्न शक्यते तेपां तदधीन-  
 त्वात् । प्राणेंद्रियसंवादोपि धूयते शास्त्रे । तथाहि इंद्रियैरुक्तं वयं  
 शरीरधारकाणि प्राणौरुक्तं वयमिति परस्परं विविदित्वा तविर्णयाय  
 ब्रह्मपार्थं गताः । ब्रह्मणोक्तं शरीराग्निर्गत्य पृथक्पृथक् प्रवेशः ॥  
 शरीरे कियताम्, यत्प्रवेशेन शरीरसुत्तिष्ठते तदेव महदिति त्रुत  
 सर्वाणांद्रियाणि प्रविष्टानि शरीरे चेष्टापिनागता । पुनर्ब्रह्मणा वा  
 प्रत्युक्तं त्वं प्रविशा । ततः प्रविष्टे वायो शरीरसुत्तिष्ठितमभूततो ब्रह्मणे-  
 कमयमेव शरीरधारकः सर्वेभ्यो महान्सर्वेषां भवतां स्वामीति । तथा-  
 च श्रुतिः ‘अथ स्तु प्राण एव प्रज्ञात्मेदं शरीरं परिगृह्योत्थापयाति’  
 इति । अत एव वद्यते ‘उक्तेन रहितो ह्येप मृतकः प्रोत्यते यथा’  
 इति प्रथमपञ्चदशाध्याये । अथ प्रकृतमनुसरामः औंस्वस्ति श्री-



स्तैः श्रीयते सेव्यते इत्योऽस्वस्ति श्रीधर्मराजः । 'यस्यामग्निष्वा-  
 त्तादयः पितृगणाः' इत्यादिपंचमस्कंधोक्तेः । गणा निजसैनि-  
 कास्तेपामीशो गणेशः । 'यमसैन्ये स्तुत्यन्ते 'इति कोशात् । पुनरो-  
 स्वस्ति श्रीश्वासौ गणेशश्वेति तथा तस्मै । यद्वा ओमा ज्ञाने-  
 नार्थात्तसद्वेन गयापिंडप्रदानेन स्वस्ति येषां त उँस्वस्तयः पि-  
 तरः । श्रिया पितृलोकलक्ष्म्या विशिष्टा ये गणा एकविंशत्संख्याकाः  
 'विश्वो विश्वभुग्गराध्य' इत्यादिना मार्केडेयोक्ताः श्रीगणाः । उँ  
 स्वस्तीनां पितृणां श्रीगणाउँस्वस्ति श्रीगणास्तेपामीशः स्वामी  
 धर्मराजस्तस्मै नमः । 'वाराणस्यां च यो वासो हरिभक्तिस्तथैव च ॥  
 गयापिंडप्रदानं च ब्रह्मज्ञानं च तत्समम्' इति बृहन्नारदीयादिति  
 धर्मराजपक्षः । अथ च कुवेरस्य सर्वधनाधिपत्वात्तदासये सोऽपि  
 नमस्कार्य इति उमा शंकरेण स्वस्ति कल्याणं यस्य सः । उँ  
 स्वस्तिः कुवेरस्तस्य शिवसखत्वप्रसिद्धेः । सखाहि सख्युः कल्या-  
 णं करोत्येवति भावः । श्रीणां धनानां रक्षका गणाः श्रीगणा य-  
 क्षास्तेपामीशः श्रीगणेशः । उँस्वस्ति श्वासौ श्रीगणेशश्वेति तथा  
 तस्मै कुवेराय नमः इत्यर्थः । इति कुवेरपक्षः । वरुणस्य जलाधि-  
 पत्वेन जलभीनिवृत्तये तमापि नमस्करोति । उँ ज्ञानं तदेव स्व-  
 मोऽस्वं तत्स्तृणं त्याच्छादयंत्योऽस्वस्तीनि रत्नानि मुक्ताहीरकादी-  
 नि । 'नद्यन्यो जुपतो ज्योप्यान्वुद्धिभ्रंशो रजोगुणः । श्रीमदादभि-  
 जात्यादियंत्र स्त्री दूतमासवः' इति दशमे नारदोक्तेः । अथ स्तृणा-  
 ते उँ । तेऽश्रीर्थस्य स उँस्वस्ति श्रीर्वरुणः । 'मुक्तावेदः  
 श्रीरक्षः । अलंकृतशारीराय वरुणाय नतोस्म्यहम्' इति मंत्रात् ।  
 उपानां यादेगणानामीशो गणेशः । 'यादेगणानामृपभं प्रचेतसम्'  
 इति तृतीयत्वं भोक्तेः । उँस्वस्ति श्वासौ गणेश उँस्वस्ति श्रीगणेशः  
 स्तस्मै वरुणाय नम इत्यर्थः । इति वरुणपक्षः । अथ वागाधिष्ठा-



विलीना यावदविशिष्टकर्मपरिपाकं वर्तते । उक्तं हि 'प्रलये वा प्यते तस्याश्चराचरमिदं जगत्' इति, तथा 'जगत्प्रतिष्ठा देवाण् पृथिव्यप्सु प्रलीयते । तेजस्यापः प्रलीयते तेजो वायौ प्रलीयते ॥ वायुः प्रलीयते व्योग्नि तदव्यक्ते प्रलीयते । अव्यक्तं पुरुषं ग्रह निष्कले संप्रलीयते ॥' इति । अव्यक्तं माया, तस्याश्च सम्भूते प्रलयो नाम मुक्ताविव नात्यन्तिको विनाशः; किन्तु सुप्तौ— मायागोचरवृत्तीनामप्यभावात् । स्वप्रतिष्ठपरमात्मप्रकाशस्तप्त्यन्तनिर्विकल्पकतया तद्वलाङ्गासमानाया अप्यप्रतिभूतप्रायत्वं न पुनरनवभानमेव, प्रतिभासमात्रशरीरस्य हि मि थ्यावस्तुनोऽनवभाने सत्यभाव एव स्यादिति नच भाव एवास्तु उत्तरसर्गानुपपत्तिप्रसंगादिति । अवशिष्टं प्राणिकर्मभित्त्वं तस्यां मायायां विलीयैव कर्मेण प्राप्तपरिपाकं स्वफलप्रदानाय परमेवरस्य सिसृक्षात्मिका मायावृत्तिर्व्यते सेपा मायावस्था ईक्षणकामतपोविचिकीर्पादिशब्दैरभिधीयते । 'तदेक्षत वहु स्यां प्रजायेय' इतिछांदोग्ये 'सएक्षत लोकात् सृजे 'इत्यैतरीये 'सोकामयत वहुस्यां प्रजायेय' इति तौतीर्णं 'तपसाचीयत ब्रह्म' इति मुँडके 'विचिकीर्पुर्वनीभूता क्वचिदभैति विन्दुताम्' इति प्रपञ्चसारे । अपरिपक्कर्मभेदाद्वनीभावतः दर्घव्यापारविकीर्पा परिपक्कर्माकारपरिणतमायाविशिष्टं वि त्तदिदमविभागावस्थमव्यक्तमुच्यतेऽत एव तस्योत्पत्तिः स्मृते 'तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं विगुणं द्विजसत्तमं' इति भारतादृष्टं स एव जगद्गुरुकारोऽध्यात्मज्ञाधारादानाभिव्यज्यमानकुँडल्य-दिग्बन्देश्चयते । यथाहुः 'शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्याप्त यद्वेद्यमां ज्ञात्वैत्यं न पुनर्विश्नन्ति जननीगर्भे गर्भकर्त्तव्यं नास' इति । 'कुण्डलिनी सर्वं या ज्ञेया सुप्रभा तु गतेव सा' इति ६



मातृकाविलासः । [ मातृकापादुर्जावः ]

त्पथमुदितो यस्तु भावः पराख्यः पञ्चात्पद्यंत्यथ हृदये  
बुद्धियुज्मध्यमाख्यः ॥ वक्रे वेस्यर्थं रुदिपोरस्य जंतोः सुउका  
वद्धस्तस्माद्वाति पवनप्रेरितो वर्णसंज्ञः । इति । तत्र वेसरी स्थूल  
मातृका सा प्रथमाधिकारिणः पूजोपकरणम्, मध्यमा सूक्षा  
का परा, पश्यंतरहृषा सूक्ष्मतरा मातृका वृत्तमाधिकार  
पूजोपकरणम्, मातृकावैविध्यं सर्वमंत्रोपलक्षणम् । अतः सा  
मंत्रा उक्तरीत्या स्थूलसूक्ष्मसूक्ष्मतरहृषाः प्रथममध्यमो  
धिकारिविषया इत्यर्थः । वहुवक्तव्यचायमर्थं उपदेशमतं  
शास्वैर्दुरधिगमत्वात्फलातिशयवत्वाच्चेति । अयमेवार्थः श्रीम  
वता पाणिनिनापि शिक्षायां भंग्यंतरेण स्फुटीकृतः ‘अथ शिळा  
प्रवक्ष्यामि’ इत्यादिना शिक्षाप्रयोजनं सम्यग्वर्णोच्चारणं तद  
व्याकरणेनैव सिद्धं किमनयेति । सत्यम् । व्याकरणे तु शब्दादः  
शासनमेव चित्यते ‘अथ शब्दानुशासनम्’ इति कौस्तुभोक्तः ।  
किञ्च व्याकरण एतचित्यते गोशब्दः सास्त्रादिमत्यर्थं साधुगिरित  
गोशब्दे जिह्वामूलेनोच्चारयितव्य इति भेदः । तदुक्तं तत्रैव ।  
द्वमपि शब्दार्थमविज्ञातमबुद्धिभिः । पुनवर्यकीकरिष्यामि ।  
उच्चारणे विधिम् ॥ इति । अस्यार्थश्च नन्वकारादयो वर्णाः ।  
स्थानेनैवोच्चार्यते परस्थाननिराकारक्षत्वात्किमयोऽस्या आरंभत  
आह । प्रसिद्धमिति । बुद्धिहीनैः प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातं संतं  
पुनः पञ्चात्स्फुटीकरिष्यामि वाचो गिर उच्चारणे उद्दिरणे विधिर  
ननु ‘विधिरत्यंतमप्रातौ’ इति भावैः स्मर्यते न चाचात्यंतमप्राति ।  
उक्तं चाधस्तात् ‘अकारादयो वर्णाः स्वस्वस्थानेनैवोच्चार्य  
ते’ इति । उच्यते । यद्यपि स्वस्थानस्थिता एवोच्चार्यते तथा  
प्यप्राप्तांशः कथनीयोऽनुप्रदानादिरेतदर्थो विधिशब्दः । वागुच्चारं



इति अनन्त्यानन्त्यसंयोगे मध्ये यमः पूर्वगुणः इत्योदब्रजिः । तथा च नारदः ‘अनन्त्यश्च भवेत्पूर्वो ह्यनन्त्यश्च परतो यदि । तत्र मध्ये यमस्तिष्ठेत्सर्वाणः पूर्ववर्णयोः ॥ वर्गान्त्यान् शपसैः साद्ब-  
मंतस्थैर्वाऽपि संयुतान् । द्विंश्चायमा निवर्तते आदेशिकमिवाध्वगाः ॥’ इति । नारदोदब्रज्योर्मतेन यमो वर्णागम इति विधीयते । अस्मा-  
च्छास्त्रात् ‘चत्वारश्च यमाः स्मृताः’ इति वर्णातरत्वेनो-  
पदेशा त्संयोगशास्त्रात् । अथ चतुरक्षराणामुदाहरणमिति प्रकृत्य  
अग्निरिति यमौ गकारौ द्वौ नकार इकारश्च । अन्ये तु यमं वर्णा-  
यांति मन्यन्ते । तथा च शौनकः ‘स्पर्शां यमानननुनासिकान्स्वाप-  
रेषु स्पर्शेष्वननुनासिकेषु’ इति । पूर्वश्चतुःपंचाशङ्किः सहाष्टपंचाश-  
त् ॥ ४ ॥ अनुस्वारो विसर्गश्चेति । स्वरमनुभवतीत्यनुस्वारः अ-  
न्वकारानुगमेनानुस्वारः इति । वक्ष्यति च ‘दंत्यमूलः स्वरानुगः’  
इति । विसर्ग इति । विविधं सृज्यते क्षिप्यत इति विसर्गः । नंकन्पै-  
चापि पराथ्रयो । परौ ककारपकारावाथ्रयः स्थानं ययोस्तौ परा-  
थ्रयो । तथा च वक्ष्यति ‘अयोगवाहा विज्ञेया आथ्रयस्थानभाजि-  
नः’ इति । ‘कपाविपि परौ स्मृतौ’ इति ‘एकपौ चापि कपा-  
थ्रयो’ इति च पाठः । परावनुस्वारविसर्गयोः परावित्यर्थः । कका-  
रपकाराथ्रयो तत्स्थानकावित्यर्थः । चशब्दादनुस्वारविसर्जनीया-  
विति पराथ्रयो । दुःस्पृष्टश्चेति । ईपत्स्पृष्टो वर्णधर्मो न वर्णा-  
तरम् । वक्ष्यति च ‘अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीपत्’ इत्यादि । तथा  
चोदब्रजिः ‘स्पृष्टकरणं स्पर्शानां दुःस्पृष्टमन्तस्थानाम्’ इति । य-  
ष्मालञ्ज यकारोऽभिघत्तेऽतो लकारो दुःस्पृष्टधर्मां । चशब्दा-  
द्वकारश्च इतिशब्दः पूरणार्थः । लकार इति लवर्णात्कारप्रत्ययः ।  
प्लुत एव चेति । लकारस्य दीर्घांदयो न संतात्यधस्तात्परमतमु-



शरीरादिव्यतिरिक्त आत्मा । छन्दोग्यश्रुतेच 'एवमेवप संप्रसादं स्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतीरूपं संपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते' इति । क एपामुच्चारयितेति पृष्ठे तस्योत्तरं दत्तमात्मोति । स कथमुच्चारयति केन क्रमेणोचारयतीतिप्रभद्यस्योत्तरं दीयते । स आत्मा उद्धचा सहार्थान्वाद्यान्समध्यं सम्यग्वगम्यार्थप्रत्यायनाय यदि शब्दा उच्चार्यन्ते तदा मनो युक्ते । वकुमिच्छया तच मैत्रियुक्ते आत्मा । मनः कायाग्निमाहन्तीति । तच मनो नियुक्तं सत्त्वं यामिं शरीराग्निमाभिमुख्येन हन्ति तेनातिसंघर्षं प्राप्नोति सोऽप्निरभिहतः सन्मारुतं वायुं प्रयुक्ते प्रेरयति । मारुतो वायुरुरसि वक्षासि चरन्मंड्रं गंभीरं स्वरमुत्पादयति 'मंद्रस्तु गंभीरे' इत्यमरणः । प्रातः सवनेन सह योगोऽस्येति प्रातस्सवनयोगस्तम् । तथा च सुयज्ञः 'मंद्रया वाचा प्रातःसवनम्' इति । गायत्रं छन्दोऽस्याथयः "एतेन गायत्रीछन्दोपि तत एव जातमिति ध्वनितम् । कंठ इति । अत्र मारुतः सवनं छन्दस्त्वरं चरन्त्यित्युवर्त्तते । कंठे चरन् वायुर्मध्यमं स्वरं जनयति मध्यांदिनं युनकीति माध्यांदिनं सवनभाजं विष्टुप्तं दोनुगामिनम् । तारमिति । तृतीयसवनभाजं तारं स्वरं मूर्ध्मि चरन्वायुर्जनयति जागतं छन्दोनुगच्छतीति जागर्ण्यम् । शीर्षं छन्दसीति । शिरःशब्दस्य शीर्षादेशस्तत्र मलभमानः शिरःकपालेनावष्टव्यत्वात्पुनः प्रत्यावृत्य वक्रमेवा य वर्णान् जनयत्युत्पादयति । पुनर्मारुतव्रहणं स्पष्टार्थम् ॥१॥ पां वर्णानां जन्यमानानां विभागो विवेकः पञ्चधा पञ्चप्रकारः ॥२॥ कैर्हेतुभिः पञ्चधा तत्राह । स्वरत इत्यादि । स्वरस्थारूप्यः ॥३॥ । वर्णज्ञातारः पूर्वे मुनय इत्येवं प्राहुस्तं र्णानां पञ्चधा विवेकं निषुणं स्फुटमुच्च्यमानं हे श्रोतारः यद्य



दिभिरेक्यं भवति किं तदपवर्गसाधनं यस्य शिक्षोपकारे वर्तते । उच्यते । वेदात्र यज्ञात्र । तथा च श्रुतिः । 'तमेतं वेदानुवच्च नेन विविदिपांति ब्रह्मचर्येण तपसा अद्यया यज्ञेनानाशकेन च' इति । वेदानुवच्चनं यज्ञगतमंत्रांगत्वात्सम्यग्वणोच्चारणेन यस्मान्मोक्षमवाप्नोति । वक्ष्यति च 'सुखमतुलं च' अतुलं सुखं मोक्षं एव भवति । 'स्वरतः कालतः स्थानात्प्रयत्नानुप्रदानतः । इति वर्णविदः प्राहुनिर्णयं तं निवोधत ॥ उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः । 'इति । अलमतिप्रसर्येन प्रकृतमनुसरामः । उदात्तश्चेति । स्वरतः कालत इत्येतौ द्वौ हेतू श्लोके विवृणोति । स्वर उदात्तादिः कालो मात्राप्रभृतिविमात्रपर्यतः । उदात्त इत्युपरिष्टात्परं गृहीतः । अनुदात्तस्तद्विपरीतः । अधस्ताद्वृहीतिइत्यर्थः । स्वरितइति न स्वरांतरं स्वरतीतिस्वरितः । आक्षेपनिष्पाद्यो य उदात्तानुदात्तविकारः तथा च नारदः । 'उच्चादुच्चतरं नास्ति नीचाद्वीचतरं तथा । त्रैस्वर्ये स्वरसंज्ञायां किं स्थानं स्वर उच्यते ॥ उच्चनीचस्थयोर्मध्ये साधारण इति श्रुतिः । तं स्वरं स्वरसंज्ञायां प्रतिजानन्ति शैक्षिकाः ॥' स्वरास्त्रय इति । त्रय एव ऋग्यजुर्विषयाः । पञ्च सत् च सामसु । ह्यस्व एकमात्रो दीर्घो द्विमात्रः प्लुतविमात्रः । 'निमेपकाला मात्रा स्यात्' इत्योदव्रजिः । तथा च नारदः । 'निमेपकाल मात्रा स्याद्विद्युत्कालेति 'चापरा' इतिशब्दः प्रकारार्थः । अनेन त्रैकालतो हेतोः स्वरतश्च विपयविभागनियमः । तथा च 'स्वर उच्चः स्वरो नीचः स्वरः स्वरित एव च । व्यंजनान्वयं वर्तते यत्र तिष्ठति स स्वरः' इति । 'ह्यस्वो दीर्घः प्लुत इति कालते नियमा अचि' ॥११॥ व्याख्यातमेतत् । 'उदात्ते निपादगांधारापुरुदात्त ऋग्यजुर्वेततो । स्वरितप्रभवा द्यते पद्ममध्यमपञ्चमाः ॥ १२ । अष्टो स्यानानि वर्णानामुरःकण्ठःशिरस्तथा । जिह्वामूलञ्च दन्ता



ओकार ओकारश्च कंठोपाभ्यां जातौ ॥ १८ ॥ एकारस्य ओक  
रस्य च सवर्णग्राहकत्वादैकारस्य ओकारस्य चैतेषां चतुण  
संध्यक्षराणां सम्बन्धिनी अद्वेषात्रा कण्ठ्या कंठजा भवतीत्यर्थ  
अध्यद्वास्ताल्खोपस्थाना इति ॥ १९ ॥ स्पष्टार्थौ ॥ २० ॥ २१  
अयोगेति । अनुस्वारो विसर्गश्च नक्षक्षपौ च इति चत्वां  
उयोगवाहाः । तथा चौदत्रजिः । ‘अयोगवाहा अः इति विसर्जनीय  
नक्ष इति जिह्वामूलीयः नक्षपौ नक्षइत्युपधानीयः अंइत्यनुस्त  
रः नासिक्यः । न विद्यते योगः संयोगो वर्णातरेण येषां ते  
योगवाहास्ते चात्रयस्य ककारादेः स्थानं भाजितुं शीलं ये  
त आत्रयस्थानभाजिनः । अन्ये तु यमानप्ययोगवाहान्मन्यंते ते  
मतेऽयोगवाहशब्दः अथसमितावयवो रुदिशब्दोऽथवर्णवद्वदित  
व्यः अनुस्वारस्वरूपमाह । अनुस्वारप्रकृतिस्तु पाणिनिनैव कथित  
‘मोनुस्वारः’ इति ॥ २२ ॥ मूलम् ॥ अलाद्युवीणानिधोपो दन्तमूल  
स्वरानुगः । अनुस्वारस्तु कर्तव्यो नित्यं ह्वोः शपसेषु च ॥ २३  
अलाद्युःतुवी अलाद्युक्तवीणाया निधोप इव शब्दो यस्य सोऽलाद्युव  
णानिधोपः स्थानं दन्तमूलं तत्र भवो दन्तमूल्यः स्वरानकारादीनः  
गच्छत्यनुभवतीति स्वरानुगः । हकाररेफयोः शपसेषु च सदा भवति  
तथा च नासदः । ‘आपद्यते भकारो रेफोप्मसु प्रत्ययेषु  
नुस्वारम् । यवलेषु परस्यर्ण स्पशेषु चोत्तमायतिम्’ इति । ‘आ  
स्यानानि वर्णानामुरः कंठः शिरस्तथा । जिह्वामूलं च दन्ताः  
नासिकोष्टो च तालु च’ इतीमं श्वेकमनुवादरूपं केचित्पठेत्  
॥ २३ ॥ ‘अनुस्वारे विवृत्यां तु विरामे चाक्षरद्वये । द्विरोष्टो  
विष्णहर्षियवोकारवकारयोः ॥ २४ ॥ व्याप्री यथा हरेत्पुत्रान्द  
द्राभ्यां न च पादयेत् । भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान्वयोजये  
त् ॥ २५ ॥ यथा सौराश्विका नर्सा नक्षी इत्याभिभाषते । एवं रंग



मातृकाविलासः । [ मातृकामादुर्जांशः ]

हकारादारभ्यालकरात् । उत्कादन्यः शेषः । अनुप्रदानं स्त्री  
 नादिकं घोपादि अनु प्रकर्षण दीयते इत्यनुप्रदानम् 'हो नादि  
 नुप्रदानो' इत्योद्ब्रजिः ॥३८॥ भमोऽनुनासिकानन्दो नादिनोहः ॥  
 स्मृताः । ईपन्नादा यण्जसः श्वासिनथ सफादयः ॥३९॥ अ-  
 प्रदानतां हतोर्वर्णानां भेदं शृणु । भासिति प्रत्याहारः भमड्णन  
 अनुनासिका इति स्वस्थानेरधिकाराः अनुपाठात् । नासिकामनुभ  
 तीत्यनुनासिकम् । भमड्णनमोऽनुनासिकनिमान् जानीयात्  
 तथा च पाणिनिः । 'मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः' । अह्वानिति ।  
 अकारो रेफञ्च हकारो झभवठथप् एते अनुनासिका अमार्गा  
 संतौ रेफहकारौ नेति व्याख्यातं पाठद्वयात् । अह्वादयो नादोऽन्त्ये  
 नादिनः स्मृताः । क्वचिदमोऽनुनासिकानन्दो वितिपाठः । तत्रामप्रत्य-  
 अइउण् ऋलक्षण् एओङ् ऐओँ द्वयवरहू लण् यमड्णनम् ए  
 अमां हकाररेफवर्जितानां विकल्पेनानुनासिकत्वं भमान्तु नित्यम्  
 तथा च शौनकः । 'सचादयो या विहिता विवृत्यः प्लुतोप्धां  
 अनुनासिकोपधा' इति । तथा । उकाश्वेति करणे युक्तः पृक्तो द्वायितः  
 शाकलेनेति । अकाररेफयोः प्रथमे पाठे नादित्वं द्वितीयपाठे हक् ।  
 रेफयोरनुनासिकत्वप्रतिपेधः । ईपन्नादा मनागूनादा यणः कथि  
 जशो जघगडदश् एते चेति । सफादयः सफवठथा एते श्वासोऽस्त्येषा  
 मिति श्वासिनः श्वासो घोपाणां वृत्तीयात् प्रथमानामघोपाश्वतुर्वा-  
 नां युग्मासोप्मणामित्योद्ब्रजिः । ईपच्छासांश्वरो विद्याद्वोपत्त-  
 तत्प्रचक्षते । दाक्षीपुत्रपाणिनिना येनेदं व्यापितं भुवि । चरः चदा  
 ३९५३, शपशश् एतन्नामकानीपच्छासाज्ञानीयात् गोर्वाचो धाम  
 यत्त्वाच्छास्वमाचक्षते वर्णविदः । शास्त्रानुपूर्वमितिय उत्काः । अय-  
 प्रयत्नविवेकं लुगमोपायेनाह । 'अल्पप्राणो विवारश्च श्वासोऽघोपत्त-  
 यैव च । आवानां वर्गवर्णानां प्रयत्नः समुदाहृतः ॥९॥

वर्गद्वितीयवर्णस्युत्कृष्टपाभ्यां सविसर्गकाः । थासाधोप  
विवाराख्यमहाप्राणप्रयत्नकाः ॥ २ ॥ घोपसंवारनादाल्पप्राण  
वर्गतृतीयकाः ॥ घोपसंवारनादाख्यमहाप्राणप्रयत्नकाः ॥ ३ ॥  
सानुस्वारचतुर्थास्तु वर्णा वर्गेषु कीर्तिः ॥ महाप्राणं  
विना प्रोक्ता अल्पप्राणाधिकास्तथा ॥ ४ ॥ वर्णपञ्चमवर्णस्तु  
घोपसंवारनादकाः ॥ यमयोवावसानास्तु वर्णाः प्रोक्ता  
विचक्षणेः ॥ ५ ॥ घोपसंवारनादाल्पप्राणकाः सुगमोक्तिभिः ॥ सा-  
दयः सान्तमादाय महाप्राणाधिकास्तथा ॥ ६ ॥ विवाराधोपथासा-  
ख्यप्रयत्नाः परिकीर्तिः ॥ घोपसंवारनादाख्यमहाप्राणास्तथैव  
च ॥ ७ ॥ हकारस्य तु विज्ञेयाः प्रयत्नाः शब्दवित्तमैः ॥ यंत्रचतु-

|   |                                     |
|---|-------------------------------------|
| कालचतुर्दशपक्षपत्तसद्वायमाः ८ क २ कर्गडचजनटडणतदनपचमस्तसद्वायमाः |                                     |
| पविसर्गाः शापसाः २६ एते थासाधोपविवाराः यरलवा एते २९ ल्पप्राणाः  |                                     |
| गद्धनज्ञवद्दणदधनवभस्तसद्वाय<br>माः यरलवा: ३१ घोपसंवारनादाः      | विषयः क २ शापसहाः २८ एते महाप्राणाः |

| वाह्यमय-<br>वाह्यामय-<br>वाः<br>प्राणः                               | विवाराधो-<br>विवाराधो-<br>पमहामाणाः | संवारनादधोपाल्पमाणाः<br>उदानानुदातस्वर्तिः<br>पापामहा-<br>माणाः | संवारनाद<br>उदानानुदातस्वर्तिः<br>पापामहा-<br>माणाः |
|--|-------------------------------------|---|---|
| अधारणि यत्तदत्प खण्डपक्ष शापस गजदद्व<br>जग्मण अदृष्टम् यरल वह्नदधम इ | व्याप्तिः<br>सृष्टः<br>वृतः         | व्याप्तिः<br>सृष्टः<br>द्रव्यः                                  | व्याप्तिः<br>सृष्टः<br>तः सृष्टः<br>वृतः            |
| आभ्यन्तर<br>प्रपत्तिः  | इपदिः<br>सृष्टः<br>वृतः             | इपदिः<br>सृष्टः<br>द्रव्यः                                      | इपदिः<br>सृष्टः<br>तः सृष्टः<br>वृतः                |

एकं चात्र लेख्यम् । 'ठन्दः पादौ तु वेदस्य हस्ती कल्पोथ पव्यते ।  
ज्योतिपामयनं चक्षुनिरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥ ४१ ॥ शिक्षा ग्राणं  
तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ॥ तस्मान्तसांगमधीत्येव त्रह्लादोके  
महीयते ॥ ४२ ॥ उदात्तमाख्याति वृपोगुलीनां प्रदेशिनीमूल-  
निविष्टमृथां ॥ उपांत्यमध्ये त्वरितं द्रुतं च कनिष्ठिकायामनुदा-  
त्तमेव ॥ ४३ ॥ उदात्तं प्रदेशिनीं विद्यात्मचयं मध्यतोगुलिष् ॥

निहतं तु कनिष्ठिक्यां स्वरितोपकनिष्ठिकाम् ॥ ४ ॥ अनुदातो  
हृदि ज्ञेयो मूर्ख्युदात्त उदाहृतः । स्वरितः कर्णमूले तु नासाग्रे प्रच-  
यः स्मृतः ॥ उदात्तं भुवि पातव्यं प्रचं नासाग्रमेवच । हृत्प्रदेशोऽ-  
नुदात्तं तु तिर्यग्नात्यादिरीरितः ॥ अधो रक्तोऽनुदात्तः स्यादुदातोऽ-  
ताप्र ईरितः । उपरिरक्तस्तिरोरक्तो वा स्वरितश्च कीर्तितः ॥ स्वरि-  
तपरा अताप्राः प्रचयाः परिकीर्तिताः । एकपदे नीचपूर्वोऽपूर्वों  
वाच्यवान्यतरयुक्तो जात्यः ॥ जात्ये तु पितृदानवद्वस्तम् । अंतोदा-  
त्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्तनीचस्वरितम् । मध्योदात्तं स्वरितं  
द्वयुदात्तं व्युदात्तमितिनवपदशस्या ॥ ४६ ॥ अग्निः सोमः प्रवो वीर्यं  
हविपां । स्वर्वृहस्पतिरिंद्राद्युहस्पती ! अग्निरित्यंतोदात्तं सोम इत्याद्य-  
दात्तं प्रेत्युदात्तं वदत्यनुदात्तं वीर्यं नीचस्वरितं हविपां मध्योदात्तं  
स्वरितिस्वरितं वृहस्पतिरिति द्वयुदात्तमिंद्राद्युहस्पतीतिव्युदात्तम्  
अनुदातो हृदि ज्ञेयोमूर्ख्युदात्त उदाहृतः ॥ स्वरितः कर्णमूलीयः  
सर्वास्ये प्रचयः स्मृतः ॥ ४६ ॥ चापस्तु वदते मात्रां द्विमात्रवैष्ण-  
वायसः ॥ शिखी रौतिं त्रिमात्रं तु नकुलस्त्वद्वमात्रकम् ॥ ४७ ॥  
कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम् ॥ न तस्य पाठे मोक्षोऽस्ति  
पापाहेरिव किल्विपात् ॥ ४८ ॥ सुतीर्थादागतंव्यक्तंसाम्रायंसुव्यय-  
स्तिथतम् ॥ सुस्वरेणसुवक्रेण प्रयुक्तं व्रज्ञं राजते ॥ ४९ ॥ मंत्रं  
हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ॥ स वाग्वज्रो य  
जमानं हिनस्तिथयेद्रशभ्युः स्वरतोऽपराधात् ॥ ५० ॥ अवक्षरम  
नायुप्यं विस्वरं व्याधिपीडितम् ॥ अक्षताः शस्त्ररूपेण वज्रं पतरि  
मस्तके ॥ ५१ ॥ हस्तहीनं तु योऽर्थीते स्वरवर्णविवर्जितम् ।  
ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो वियोनिमाधिगच्छति ॥ ५२ ॥ हस्तेन वे  
दं योऽर्थीते स्वरवर्णार्थंसंयुतम् ॥ ऋग्यजुःसामभिः पूतो व्रज्ञ  
टोके मरीयते ॥ ५३ ॥ शंकरः शांकरीं प्रादादाक्षीपुत्राय धीमते ।



वसाने नटराजराजो ननाद ढकां नवपञ्चवारम् ॥ उद्धर्तुकामः सं-  
 नकादिंसिद्धानेतद्विमशें शिवसूत्रजालम् ॥ १ ॥ ' नटराजराजः ति-  
 थरूपविलासवैचित्र्यचमत्कारप्रवीणत्वस्य वागाद्यगोचरत्वेन तत्त्वं-  
 काशकत्वान्नटराजराजः तांडवादिविलासवैचित्र्यचमत्कारप्रवीण-  
 त्वस्य त्वन्यत्र नटादावपि सत्त्वात् । स स्वात्मज्ञापनाय ढकानि-  
 नादव्यजेन सनकादीनुद्दर्तुकामोऽयं नवपञ्चवारं स्वांतरंतात्मतं  
 प्रकटयितुं तद्वसाने ढकां ननाद । अहं तदेतद्विततनिनादोऽ-  
 द्वृतवर्णांद्यात्मकमाद्यमतिरहस्यं मातृकारूपेण सनातनमपि  
 शब्दशास्त्रप्रवृत्तये किंचिद्वेलक्षणयेन श्रीशिवेनोक्तं शिवसूत्रजालं  
 शिवसंयंथिसूत्रसमूहं कल्याणरूपसूत्रसमूहं वा विमुक्तेनिर्गामं  
 स्फुटीकरोमि विमशें इति छांदसप्रयोगः ॥ १ ॥ अनुवन्नः



तां कारणत्वतः । इकारः सर्ववर्णनां शक्तित्वात्कारणं मतम् ॥ ७ ॥  
 जगत्स्पृष्टभूद्राञ्छा यदा ह्यस्य तदाभवत् ॥ कामवीजमिति प्रा-  
 हुमुरुनयो वेदपारगाः ॥ ८ ॥ अक्षरार्थः स्पष्ट एव कामवीजस्वरूपं  
 तं वान्तरे । 'स्वप्रकाशपरमात्मवस्तुनो दृश्यमानजगतः सिसृक्षया ॥  
 कामतः परशिवप्रवेशनं कामवीजमिदमेव निश्चितम्' इति 'वीजं विं-  
 दुद्वयारूढं सार्वं योनिस्वरूपकम् ॥ महाकामकलारूपमात्मानं  
 चित्तयेत्प्रिये' इति श्रीरुद्रेणोमां प्रत्युक्तम् ॥ ८ ॥ उक्तमेव द्रष्टव्यते  
 'अकारो ज्ञातिमात्रः स्यादिकारञ्च कला मता । उकारो विष्णुरि-  
 त्याहुव्यापकत्वान्महेश्वरः ॥ ९ ॥' उकार इति उव्यापकत्वेनेश्वर  
 आसीदित्यर्थके उणीश्वर इत्यब्रेति भावः । ननु सर्ववेदान्तेषु परमेश्वर-  
 एक इति निश्चितत्वात् मायामां चित्कलामात्रित्य जगदूपोऽभूदि-  
 त्युक्तेरद्वैतहानिःस्यादित्याङ्गंक्याह । 'ऋलक्षसर्वेश्वरो मायां मनो  
 वृत्तिमदर्शयत् ॥ तामेव वृत्तिमात्रित्य जगदूपमजीजनत् ॥ १० ॥'  
 ऋपरमेश्वरः लमायाख्यां मनोवृत्तिमदर्शयत् तामेवामात्रित्य स्वेच्छया  
 जगजनयामासेत्यर्थः । ऋपरमेश्वरइत्यत्र 'ऋतं सत्यं परं व्रतं  
 पुरुषं कृष्णपिंगलम्' इति श्रुतिः प्रमाणम् । ऋतमिह तपर इदुर्दि-  
 तिवत् । ऋतपदार्थमेव परं व्रक्षोत्यर्थः 'सोऽकामयत वहु स्यां प्रजा-  
 येय' इति श्रुत्यन्तरम् श्रीतंत्रेऽपि' मम चाभून्मनोरूपं लकारः परमे-  
 श्वरी' इति ऋलवणीं यथा तादात्म्यमापन्नो संध्यादिकार्यं कुरुत-  
 स्तथा मायेशावापि जगत्कार्यं कुरुत इति भावः ॥ १० ॥ तादा-  
 त्म्यमेवाह 'वृत्तिवृत्तिमतोरञ्च भेदलेशो न विद्यते । चंद्रचंद्रिकयोर्थद-  
 द्यथा वागर्थयोरिव ॥ ११ ॥' इवेह पादपूरणे । अत्र प्रकृ-  
 ते भेदलेशो वास्तव इत्यर्थः ॥ १२ ॥ 'स्वेच्छया स्वस्य चिच्छकोवि-  
 त्यापत्यसो ॥ वर्णनां मध्यमं कूविमृलवर्णद्वयं विदुः  
 ॥ १३ ॥' असौ परमात्मा स्वेच्छयेष स्वसंविधिचिच्छको चिदाभा-

[ मातृकामादुर्भावः ] मातृकाविलासः ।

( ३६ )

सग्रहणयोग्यायांमायायां निमित्तभूतायां विश्वं जनयति । ‘मम  
योनिर्महद्वल्ल तस्मिन्गर्भे दधाम्यहम्’ इति श्रीमुखोक्तः । क्षीवं  
ब्रह्मरूपमित्यर्थः ॥ १२ ॥ ननु जन्यजनकभावेऽद्वैतहानिः स्या-  
‘दित्याशंकायां ‘तत्सृष्टा तदेवानुप्राप्तिशत्’ इति उतिमाश्रित्याह ।  
‘एओऽइ मायेश्वरात्मेक्यविज्ञानं सर्ववस्तुपु ॥ १३ ॥ जन्यजनकत्वं  
तानां स एक इति निश्चितम्’ ॥ १३ ॥ जन्यजनकत्वं

च स्वस्त्रैव तत्तद्वपेण विवर्तनादितिनाद्वैतहानिः । अकारो  
काराभ्यां निष्पत्नप्रणवरूपेणोक्तरेण सगुणनिर्गुणयोरैक्ये  
वोधिते तेनैव हप्तिन सर्ववैश्यवुद्धो द्वैतनाशो ध्वनितः । सम-  
एव्यष्टिभेदेन पूर्ववर्णयुतद्वितीयस्य तद्युततृतीयस्य च समन्वयवो-  
धकमिदं सूत्रम् । अकारात्मकः ईमायायुक्तः सत् य एहूपः स  
ओऽइ अनुज्ञानरूपः प्रज्ञानात्मना सर्ववस्तुनामेकत्वादद्वैतोपप  
तेन नानात्मम् । जन्यजनकत्वं च स्वयं प्रविश्य तत्तद्वपेण वर्तत  
त्यर्थः । वटवीजन्यायेन च पूर्वमूत्रदद्यजनितं वर्णपञ्चकमेव स-  
लजगत्कारणमिति प्रागुक्तमुत्तरमूत्राणामपि तस्मादेव संभवः  
एव्यष्टिभेदेषु पूर्ववर्णयुतद्वितीयस्य तद्युततृतीयस्य च सं-  
योगजनकामेदं सूत्रं समन्वयवोधकमध्येकत्वेनोक्तं सर्ववेदसंमतं  
च । तथा हि सनकदक्षिणामृतिंसंवादे महावाक्यविवरणे ‘शृणुत्वं  
सावधानेन चतुर्णामपि साम्यता । देवानां च महाभाग चतु-  
ष्काणामिहोच्यते ॥ ब्रह्मशब्देन यद्गत्वा तत्प्रज्ञानमिहोच्यते ।  
प्रज्ञानं ब्रह्म यस्माद्वित तस्माद्ब्रह्माऽस्मयहं ततः ॥ यतो जीवोऽपि  
ब्रह्मैव ततस्तत्त्वमसीति वे । अन्यस्य वारणार्थाय द्वयमात्मेत्यर्थव-  
णे’ ॥ इति ॥ १३ ॥ ननु स्वात्ममृत्तस्य परमेश्वरस्य कथं  
गत्कारणत्वं तत्राह ‘एओऽइ ब्रह्मस्त्रूपः सञ्जगत्स्वातिर्गतं  
ः ॥ इच्छया विस्तरं कर्तुंपाविरासन्निमहामुनिः ॥ १४ ॥ ’ त-

ईक्षणानंतरं स्वांतर्गतं स्वस्मिन्सूक्ष्मरूपेण स्थितं जगद्विस्ता-  
 रयितुमिच्छुः ऐआदिशक्तियुतः अकाराक्षरः पूर्वंगताकोरकोरी  
 दीर्घयोगस्यैव ऐकारत्वमेकत्वं च सम्यज्ञानस्वरूपः परमेश्वरे  
 यः पूर्वसूत्रगतः स एव अकारदीर्घोकारदीर्घस्यैव योगे औकारतं  
 यः प्रज्ञानात्मा मायाशब्दलितः स औकारः य आऊ इति ॥ १४ ॥ एवं  
 शिवादिप्रकृत्यंतानां चतुर्दशतत्वानामुद्भवं वर्णयित्वा पञ्चभूतां  
 द्युद्भवमधिमसूत्रस्य वर्णंराह । 'भूतपञ्चकमेतस्माद्यवरमहेश्वरात् ॥  
 व्योमवाय्वम्बुवह्नयाख्यभूतान्यासीत्स एव हि ॥ १५ ॥ 'हयवररूपा-  
 न्महेश्वरात् सएवपरमेश्वरएव ॥ १६ ॥ 'हकाराद्योमसंज्ञश्चयकाराद्वाङ्  
 रुच्यते ॥ रकाराद्विस्तोयं तु वकारादिति शैववाङ् ॥ १६ ॥  
 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुवायोरग्निर-  
 ग्रेरापः' इति श्रुतेरेतस्मात्परमेश्वराद्वृतपञ्चकमाकाशादिप्रपञ्चकारण  
 मासीदिति ॥ १३ ॥ नन्वस्मिन्सूत्रे भूतपञ्चकमासीदित्युक्तंतत्राकाशादि-  
 चतुष्यमेवोक्तं न पृथ्वीति तत्राह । 'आधारभूतं भूतानामन्नादीनां च  
 कारणम् ॥ अन्नाद्रेतस्ततो जीवः कारणत्वाल्लणीरितम् ॥ १७ ॥ 'भू-  
 तानामुद्दिजस्वेदजजरायुजांडजानां प्रधानकारणत्वादाधारभूतं पृ-  
 थ्वीति लणितिशब्देनोच्यते ॥ १७ ॥ पुनस्तन्मात्रोत्पत्तिक्रममाह  
 'शब्दस्पशौ रूपसरसगंधाश्चभमङ्गनम् ॥ व्योमादीनां गुणा एते  
 जानीयात्सर्वस्तुपु ॥ १८ ॥ 'पञ्चवर्गेष्वतिमवर्णा गुणास्ते च पांच-  
 वर्गाः ॥ त्रे संतीति भावः ॥ १९ ॥ द्वाभ्यां कर्मद्वियोत्पत्तिः  
 ५ । 'वाक्पाणी च झटभभासीद्विराहूपचिदात्मनः ॥ सर्वजंतुपु-  
 स्थावरादौ न विद्यते ॥ २० ॥ वर्गणां तुर्यवर्णा ये  
 अन्यतः न हि ते ॥ घटधप् सर्वभूतानां पादपायुडपस्थकाः  
 ॥ २० ॥ 'संध्यभावश्चांदसः । अन्यतस्पष्टम् ॥ १९ ॥ २० ॥ ज्ञानेन्द्रि-  
 यसंभवमाह । 'श्रोत्रत्वद्वन्यनन्नाणजिह्वाधीद्वियपञ्चकम् ॥ सर्वेषां



## अथ चक्रम् ।

८ | भासां तमिकारे निर्गुणतापाश्वरः सः;

९ | इग्रामिकारा मायागतिस्तमाश्रित्य कामपीतं भूत्या

१० | चासां एषामः एषु इधरः संपत्तः । अत्र द्वैतांकायामाद्

११ | करारः परमेष्ठाः

१२ | भासां भोगात्मिकाश्रित्य चराचरमनीततद्वृत्तितिमतोद्देत्यभावेन चदचन्द्रिकयोरिवेक्ष्यमृतया च लट्टवर्णः पृथग्य न द्वैतम् ।

१३ | भासां तारामंगादेश्वरः स च मायाप्रहित इधरः सैचक एव

१४ | भासां भासां निष्पत्र बोल्कारः निष्पत्र जन्मजनकभावेद्वैतशकापात्ता वट्पीत्यपेक्षाद्वैतास्मर्थत्वा

१५ | भासां भासां निष्पत्र बोल्कारः निष्पत्र विष्वित्युपरिष्वारिदिशकिषुल इश्वर आकारद्वैतिकारयोगात्मतिर्देः

१६ | आकृत इयागिमांग भासिर्भूतस्तादित्युपुरुषः ततः परमेष्ठात्

| १ | धारानाः | २ | धृषिणी  | ३ | रसः    | ४ | पादी        | ५ | त्वक्        | ६ | स      | ७ | माणः        | ८ | उदानहिति | ९ | प्राणपूचक  | १० | मासित्    | ११ | पुरुषः   | १२ |
|---|---------|---|---------|---|--------|---|-------------|---|--------------|---|--------|---|-------------|---|----------|---|------------|----|-----------|----|----------|----|
| १ | पाषुः   | २ | श       | ३ | शब्दः  | ४ | ग्राहः      | ५ | पाषु         | ६ | ग      | ७ | चशुः        | ८ | अपानः    | ९ | क          | १० | मनः       | ११ | प        | १२ |
| १ | जन्म    | २ | स्पर्शः | ३ | श्वासः | ४ | यात्        | ५ | उपस्थ        | ६ | द्वा   | ७ | ध्राणः      | ८ | समानः    | ९ | उ          | १० | सुखिः     | ११ | श        | १२ |
| १ | भासि.   | २ | कृपम्   | ३ | भ      | ४ | पाणीश्चाचि- | ५ | श्रोत्रम् चक | ६ | जिवेति | ७ | ज्ञानंदिष्य | ८ | व्यातः   | ९ | मांदृक्षिः | १० | व्याकरणम् | ११ | अदंकुतिः | १२ |

प्राणादेः पुरुषः उपरस्तेत तत्त्वातीत्युपुरुषादिः पुरुषोत्तेत कामयोरेव तत्त्वात्प्राप्तानात्योदयः परित्यन्तारपरम् भन्त अप्यते तत्त्वे  
नामेऽपरामार्ग भवेत्त्वात्प्राप्तानात्योदयः परित्यन्तारपरम् भन्त अप्यति तिरुम् ।



यि । मातृकावणांनां पौत्राणांपर्यु परित्यज्येति येयम् । तदुर्जु । 'म-  
हादेवो मुर्नीद्रेभ्यो मातृकामेव संजगो । पौत्रापर्युपरित्यज्य प्रत्याहा-  
रप्रवृत्तये ॥ सर्वथा सापि नो त्यक्ता चोऽकुरित्यादिदश्मनात् ।' किं-  
च 'स्पर्शात्स्योप्मसंज्ञादिकमत्यागेन संभवेत्' इति सनातनकमल-  
श्रीशोनककृतयेदविभागप्रधोत्तरत्येनश्रीमृतेनयेदाविभावार्थं प्रक-  
टीकृतः । श्रीमद्भागवतद्वादशस्कंधे तथाहि । 'शोनक उवाच । पं-  
लादिभिर्व्यासशिष्येदाचार्यमहात्मभिः । वेदाश्र कतिथा व्यस्ता  
एतत्सोम्याभिधेहि नः ॥ मृत उवाच । समाहितात्मनो ब्रह्मन्-  
क्षणः परमेष्टिनः । हृदाकाशादभूत्वादो वृत्तिरोधादिभाव्यते ॥ ५-  
दुपासनया ब्रह्मन्योगिनो मलमात्मनः । द्रव्यक्रियाकारकात्म-  
धूत्वा यांत्यपुनर्भवम् ॥ ततोभूत्विवृद्धोकारो योऽन्यक्तप्रभवः स-  
राद् । यत्तद्विज्ञः भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ शृणोति य इम-  
स्फोटं सुप्तश्रोत्रे च शून्यदृक् । येन वाग्व्यज्यते यस्य व्यक्तिं  
राकाश आत्मनः । स्वधाम्नो ब्रह्मणः साक्षाद्वाचकः परमात्मनः । स-  
सर्वमंत्रोपनिषदेवीजं सनातनम् ॥ तस्य ह्यासंख्यो वर्णा अ-  
काराद्या भृगुद्धह । धार्यन्ते यैस्त्रयो भावा गुणनामार्थवृत्तयः ॥ ते-  
नाक्षरसमान्नायमसृजद्गवानजः ॥ अंतस्थोष्टस्वरस्पर्शहस्तदी-  
र्घादिलक्षणम् ॥ तेनासौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वर्दनेर्विभुः ॥ सव्याह-  
तिकान्सोकारांश्चातुर्हेत्रविवक्षया ।' इति ॥ व्याख्यातं चैतच्छ्रीस्वा-  
मिचरणैः । ब्रह्मणो हृदि य आकाशस्तस्मान्नादोऽभूत् यः कर्ण-  
पुटीपिधाने श्रोत्रनिरोधादस्मदादिष्वपि विभाव्यते वित्कर्यते य-  
तः ॥ ३ ॥ यस्य नादस्योपास-  
करणस्य मलं धूत्वापोह्य किभूतं मलं द्रव्यमधि-  
तं क्रियाऽध्यात्मं कारकमधिदैवतमेवं विधाख्या यस्य तथाभूत-  
। तत्र नादोपासनतो यथा मोक्षः सोपि वर्णितस्तदुत्पत्तिपु-



यि । मातृकावर्णानां पौर्वापर्यं परित्यज्येति ध्येयम् । तदुक्तं । ‘महादेवो मुनींद्रेभ्यो मातृकामेव संजग्गो । पौर्वापर्यं परित्यज्य प्रत्याहा रप्रवृत्तये ॥ सर्वथा सापि नो त्यक्ता चोऽकुरित्यादिदर्शनात् ।’ किञ्च‘स्पर्शात्तस्थोष्मसंज्ञादिकमत्यागेन संभवेत्’ इति सनातनकमत्तु श्रीशौनककृतवेदविभागप्रश्नोत्तरत्येनश्रीसूतेनवेदाविभावार्थं प्रकटीकृतः । श्रीमद्भागवतद्वादशस्कंधे तथाहि । ‘ज्ञानक उवाच । पैलादिभिर्व्यासशिष्यैर्वेदचार्यैर्महात्मभिः । वेदाश्च कतिधा व्यस्ता एतत्सौम्याभिधेहि नः ॥ सूत उवाच । समाहितात्मनो ब्रह्मन्त्रह्यणः परमेष्ठिनः । हृदाकाशादभूत्वादो वृत्तिरोधाद्विभाव्यते ॥ यदुपासनया ब्रह्मन्योगिनो मलमात्मनः । द्रव्यक्रियाकारकात्म्यं धूत्वा यांत्यपुनर्भवम् ॥ ततोभूत्रिवृदोंकारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराद् । यत्तल्लिङ्गं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ शृणोति य इमं स्फोटं सुतथोत्रे च शून्यहृक् । येन वाग्व्यज्यते यस्य व्यक्तिराकाश आत्मनः । स्वधान्नो ब्रह्मणः साक्षाद्वाचकः परमात्मनः । संसर्वमंत्रोपनिषद्वेदवीजं सनातनम् ॥ तस्य ह्यासंख्यो वर्णा अकाराद्या भृगृह्णह । धार्यन्ते यैस्ययो भावा गुणनामार्थवृत्तयः ॥ तेनाक्षरसमान्नायमसृजद्वगवानजः ॥ अंतस्थोष्टस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादिलक्षणम् ॥ तेनासौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वेदनैर्विभुः ॥ सव्याहृतिकान्सोकारांश्चातुर्होत्रविवक्षया ।’ इति ॥ व्याख्यातं चैतच्छ्रीस्वामिचरणैः । ब्रह्मणो हृदि य आकाशस्तस्मान्नादोऽभूत् यः कर्णपुटपिधाने श्रोत्रनिरोधादस्मदादिष्पविष्पविभाव्यते वितर्यते यस्यान्नाहन्नामापि योगशास्त्रेकथ्यते ॥ १ ॥ यस्य नादस्योपासनयाऽत्मनोतःकरणस्य मलं धूत्वापोद्य किभूतं मलं द्रव्यमधिभूतं क्रियाऽव्यात्मं कारकमधिदैवतमेवं विधाख्या यस्य तथाभूतम् । तत्र नोदोपासनतो यथा मोक्षः सोपि वर्णितस्तदुत्पत्तिपु-

रस्सरंयोगशास्त्रे तथाहि । ' गुदध्वजांतरे कंदमुत्सेधाद्यच्छुलं  
 विदुः । तस्माद्विगुणविस्तारवृत्तरूपेण शोभितम् ॥ विदुविविदुः  
 ' मापस्थाने मपं कुर्याच्छंदोभंगं नकारयेत् ॥ इति कविसंप्रदाया-  
 द्विदुशन्दोव्रविदुपरो ज्ञेयः ॥ ' नाड्यस्तत्र समुद्रूता मुख्या-  
 स्तिसः समर्थिताः । इडा वामे स्थिता नाडी पिंगला दक्षिणा  
 मता । तयोर्मध्यगता नाडी सुपुन्ना वंशमास्तिता ॥ ' वंशं पृष्ठवं-  
 शाख्यम् । ' पार्दागुष्टद्वयं याता शिफाभ्यां शिरसा पुनः । व्रह्म-  
 स्थानं समापन्ना मूर्यसोमाग्रिरूपिणी ॥ ' शिफाभ्यां जटाभ्याम् ।  
 ' तस्या मध्यगता नाडी चित्राख्या योगिवल्लभा । व्रह्मरंध्रे विदु-  
 स्तस्यां पद्ममृतनिर्भं परम् ॥ आधारार्थं विदुस्तत्रमतभेदादने-  
 कथा ॥ दिव्यमार्गमिदं प्राहुरमृतानंदकारणम् ॥ आधारकन्दमध्य-  
 स्यं त्रिकोणमनिसुंदरम् । तत्र विद्युल्लताकारा कुंडली परदेव-  
 ता । सुतादिभोगसदशाकृतिजीविसमाधिता । हंसः प्राणात्रयो  
 नित्यं प्राणो नाडीपथात्रयः । आधारादुद्गतो वायुर्यथावत्सर्व-  
 देहिनाम् ॥ देहं संव्याप्त नाडीभिः प्रयाणं कुरुते वर्दिः ॥ अंगु-  
 ष्टाभ्यामुभे श्रोत्रे तजंनीभ्यां विलोचने । नासारंध्रे मध्यमाभ्याम-  
 न्याभिर्वदनं दृढम् ॥ वद्धान्मप्राणमनसामेकत्वं समनुम्मग्न् ।  
 धारयेन्मासतं सम्यग्योगोऽयं योगिवल्लभः ॥ नादः संजायते तस्य  
 क्रमादभ्यसतः श्वेतः । मत्तमृगांगनार्गीनसदृशः प्रथमो धर्मिः ॥ वं-  
 शिकास्यानिटापृष्ठः । वंशाभ्यनिसमोऽपरः ॥ घंटाग्रवसमः पश्चा-  
 त्तुनिर्भेषसमोऽपरः ॥ एवमन्यसतौं पुंसां संसारध्वांतनाशनम् ॥  
 ज्ञानमुत्पद्यते पूर्वे हंसलक्षणमव्ययम् ॥ पुंप्रकृत्यान्मक्तो प्रोक्तो विं-  
 दुसर्गोऽपर्नापिभिः । ताभ्यां क्रमात्समुद्रूतौ चिन्दुसर्गांवमानकौ ॥  
 हंसो तौ पुंप्रकृत्याख्यो हंसान्प्रहृण्वत्स्तुसः । जनया कथिता  
 ताभ्यां जीवोऽप्यसुपतिष्ठते ॥ पुरुषं स्वाध्ययं मत्ताप्रहृण्वत्वं





( ४४ )

तिस्यशंन्तरोपातस्यभूपिताम् ॥ २ ॥ विचित्रभाषावितां  
 उन्द्रेभिरुमते: । अनन्तपारां वृहतीं सृजत्याक्षिपते स्वयम् ॥ ३ ॥  
 गायव्युप्तिगुणुपुच्चवृहतीपंक्तिरेव च । विष्टुजगत्यतिच्छंदो द्वात्य-  
 एनपितमिश्रिराद् ॥ ६ ॥ 'इति । पूर्वं वेदस्य विकांडविषयस्य  
 इत्यरा प्रापादितं 'वेदावलात्मविषयास्त्रिकांडविषया इमे' इत्य-  
 इत्यरा देवतम् तत्र श्रीभगवतोत्तरितम् हेतद्व शब्दवल्ल स्वरूपतोऽ-  
 धीराशुर्विज्ञेयमेवातच सूक्ष्मं स्थूलं चेति द्विविधम् । तत्र सूक्ष्मं ताव-  
 रहारूपतोपि दुर्ज्ञेयामत्याह । प्राणेद्वियमनोमयं प्रथमं प्राणमयं  
 परारूपं ततो मनोमयं पश्यत्याख्यं तत इंद्रियगम्यं  
 गम्यमाख्यं तस्य वाग्व्यंजकत्वेन वाङ्गिद्रियप्रधानत्वात् ।  
 किञ्चानन्तपारं समष्टिप्राणादिमयस्य निर्विशेषस्य च तस्य का-  
 लतो देशतश्चापरिच्छेदात् । अर्थतोऽपि दुर्ज्ञेयत्वमाह । गंभीरं ति-  
 गूढार्थं तत एव दुर्विगद्यां मतिप्रवेशानर्हम् ॥ तथा च श्रुतिः ।  
 'त्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्वाल्लणा ये मनीषिणः  
 गुहा व्रीणि निहता नेङ्ग्यन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥' इ  
 व्याख्यातचरेयं श्रुतिः । तत्र मनीषिभिरेव ज्ञेयं सूक्ष्मं रूपं द  
 यति । मयेति । मयांतयोमिणोपवृंहितमधिष्ठितम् । अंतस्थतं  
 प्यपरिच्छेदमाह । भूम्रेति । आधिष्ठातृत्वेऽप्यविकारित्वमा-  
 त्रवल्लणेति । अविकृतस्यापि नियन्तृत्वं घटयति । अनन्तशक्तिर्नो  
 भूतेषु सर्वप्राणिषु वोपरूपेण नादरूपेण लक्ष्यते मनीषिभि  
 अत्यन्तसूक्ष्मत्वेन दर्शने हृषांतः । विसेपूर्णा तनुरिवेति ॥ २  
 ततो वैखर्याख्याया वृहत्या वाच उत्पत्तिप्रकारं सहष्टांतमाह  
 येति । हृदयात् सकाशान्सुखाद्वारात् उद्भवते वहिः प्रकटयति  
 प्राधीनिके दर्शयति । आकाशादिति । प्राणस्तदुपाधिर्हिरण्य



गणाश्चतुर्लघूपेता: पञ्चार्यादिपु संस्थिताः ॥ १ ॥ ' यथा सर्वगुरु  
इति अन्त्यगुरुः ॥ २ मध्यगुरुः ॥ ३ आदिगुरुः ॥ ४ चतुर्लघू  
। ॥ १ ॥ यत्र गणत्रयमुहूर्ध्य यतिर्दलयोश्च सैव पथ्या स्थाव  
॥ २ ॥ उल्लंध्य गणत्रयमादिमंशकलयोद्देयोर्भवति पादः ॥  
यस्यास्तां पिंगलनागो विपुलामिति समाख्याति ॥ ३ ॥ उभया  
द्वयोर्जकारौ द्वितीयतुयौ गमध्यगौ यस्याः ॥ चपलेति नाम  
तस्याः प्रकीर्तिं नागराजेन ॥ ४ ॥ आद्यं दलं समस्तं भजेत  
लक्ष्म चपलागतं यस्याः ॥ शेषे पूर्वजलक्ष्मा मुखचपला सोदिता  
मुनिना ॥ ५ ॥ प्राक्प्रतिपादितमद्देहं प्रथमे प्रथमेतरे तु चपला-  
याः ॥ लक्ष्माश्रयेत सोक्ता विशुद्धधीभिर्जघनचपला ॥ ६ ॥ आ-  
र्याप्रथमदलोकं यदि कथमपि लक्षणं भवेदुभयोः ॥ दलयोः कृ-  
तयतिशोभां तां गीर्ति गीतवद्गुर्जेशः ॥ ७ ॥ आर्याद्विती-  
यकेऽद्देहं यद्गदितं लक्षणं तत्स्यात् ॥ यद्युभयोरपि दलयोरुपगीर्ति-  
तां मुनिवृत्ते ॥ ८ ॥ ' इत्यादीनि वहूनि मात्राछंदांसि संति तानि  
च पिंगलादिभ्योऽवसेयानि । यतिर्विच्छेदसंज्ञक इति दलज्ञकला-  
वद्वपर्यायौ । लक्ष्म लक्षणम् । वर्णच्छंदसां च पद्मिश्रितजातिः  
संति तदुक्तं वृत्तरत्नाकरे । ' आरभ्यैकाक्षरात्पादादेकैकाक्षर-  
द्वितैः । पृथक्छंदो भवेत्पादैर्यावित्पद्मिश्रितिं गतैः ॥ तदूर्ध्वं चं-  
डवृष्ट्यादिदंडकाः परिकीर्तिताः । शेषं गाथास्त्रिभिः पद्मिःश्वरण-  
शोपलक्षिताः ॥ उक्तात्युक्ता तथा मध्या प्रतिष्ठान्या मुपूर्विका ।  
गायत्र्युप्तिणगनुपुष्पवृहती पंक्तिरेव चात्रिपुष्पजगती चैव तथाऽति-  
जंगती मता । शकरी सातिपूर्वा स्यादप्यत्यष्टी तथा स्मृते ॥  
धृतिश्चातिधृतिश्चैव कृतिः प्रकृतिराकृतिः । विकृतिसंकृतिश्चैव  
प्रतिकृतिः ॥ ९ ॥ ' इति ॥ अथ क्रमादासुकरितिच्छंदांसि  
उक्तायांगः श्रीः अत्युक्तायां गौ स्त्री । म-



कारैर्गुरुर्दर्पमालास्यात् यदि सौ जरगाजगत्समानिकास्यात्  
 तौ रौ जगौ यदा स्युस्तदा पृष्ठदती । उक्ता कनककेतर्क  
 तसजाजगौ चेत् भसजसगा मयूखसरणिः स्यात् । उक्त  
 पंकजधारिणी मसजसा गः यदि सौ जसगाः कुवेर्कुटिका । उक्त  
 प्रमोदतिलका तभजा जगौ प्रज्ञामूलं मभनयगणगाश्वेतस्युः यमै  
 रौ विख्याता चञ्चरीकावलीगः । त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीह  
 वैदैरंत्रैम्बो यसगा मत्तमयूरः । सचतुष्टयगाविह तारकवृत्तम्  
 सजसाः सगौच कथितः कलहंसः । सजसा जगौ च यदिमंजुभाषिणी  
 मंजुमालिनीयदि रसौ सजौगुरुः । नगणयुगलमत्र रौगः प्रमोदः कर्मठ  
 माह भकारचतुष्टयगौः । उक्ता यदा तभसजगाः प्रभावती अशोकनामा  
 तरंप्रभावत्याः च नयुगलरजगुचेदशोकपुष्पम् । अखंडमंडनं त्रै  
 रजौगवगरसैः जलधि नगुरुयदि हरिवनिता । शक्त्यर्याम् चत्वारो माणौ  
 चेतस्युः स स्यात्संकल्पासारः । उक्ता वसंततिलका तभजा जगौ गः ।  
 द्विः सप्ताच्छदलोलाम्भौ गौ यदि चेतस्युः भोजसनकारगगङ्गादुवदना  
 नयुगरसलगैः स्वरैरपराजिता । रौ तकारौ गुरु चेतस्युर्यदा वश्रूतं  
 क्षमीः । प्रतिभादर्शनमुक्तं स भतनगागः । सभसाजोगुरुयुगलं चक्षं  
 मूलम् । नासाभरणं तोयोभतलागच्छयदा । चूडापीडं मभनयगण  
 गागुर्वत्र तोनोनयगुयुगमिह पारावारः । सगणौ भगणौ गौ यर्थ  
 मन्मथनामा तोयोभगणौ गौ चेद्यति सा रतिरेखा । अतिशय  
 र्याम् । क्रीडितकटका यदि भः सौ मौ रुद्रेवदेः । मो भौ  
 चेद्यादि चार्वटकं स्यादिग्भवाणेः भ्रो मो यो चेद्रवेतां सप्ताष्टकं  
 द्रलेखा । चित्रानामच्छुंदः प्रोक्तं चेद्ययो मा यकारौ । ननमयय  
 तेयं मालिनी भोगिलोकेः । इह पंचसकारकृता भ्रमरावलिः  
 । । । नजौ भजौ रसहितौ प्रभद्रकम् । गुरुनिधनमनु३४ ल  
 त्तरादिनः । यत्र स्युमंननरयगणाः कुमारलीला नागेर्थ



द्वौलविक्रीडितम् । भवेच्छायावृत्तं यमनसतयुग्मं चेददा गस्तदा  
 यत्र स्यान्मननससजगुरुकलपलता पताकिनी । नयुगणुरुलयुग्मां  
 रत्तरं यदा प्रपञ्चचामरम् । अथैरविभिर्यदा तो जतो भनसगु कि  
 रणकीर्तिः । कृत्याम् २० ज्ञेया सप्ताश्वपद्मिरभनयभलाक्षेतुर्व  
 ना । रसाश्वागैयो मो नयुगतयुगगा गस्तदा नाम शोभा । अंगा  
 श्वागैमो मो नयुगतयुगमा गस्तदा भूरिशोभा । सभरा नो मयद  
 गुरुश्व । कथितं मत्तेभविक्रीडितम् । सौरभशोभासारं  
 स्याद्भमतनसनला गुरु यदि चेत् । पद्मभगणाश्व गुरु  
 यदि वीरविमानमिदं खलु वृत्तम् । प्रकृत्याम् २१ प्राप्तं  
 व्रयेण विमुनियतियुता स्वाधरा कीर्तितेयम् । रो नरो नरता  
 भवति खलु यज्ञसा कनकमालिका । इह सप्तसकारकृता फारि  
 पप्रथिता भवति प्रतिमा सप्तभकारविनिर्मितकायमिदं तदिदं  
 मत्र हि यकारा भवेयुर्यदा सप्तसा स्यात्फणीशोदिता विषुदाली  
 अप्राकृत्याम् २२ मौगौ नाश्वत्वारो गो गो घसुभुषनयतीर  
 भवति हंसी । वनवासिनी सजं भरो नसला यदा दशरथिपतिश्च  
 चतुर्भिर्यकारैस्त्रिभिश्चापि रैफैवार्नीराजना गैकयुक्तेः । यदि  
 ति चतुःसगणा नयभा गुरु भवति स्वर्णभरणम् । यत्र  
 तना भः सगणगुरु चेदर्भकमाला । विकृत्याम् २३ नजर  
 जभा जभो लयुगुरुबुद्धेस्तु गदितेयमद्रितनया । गोत्रगरीयो  
 यदा चेद्गणस्तो नतनयनजा लगुरु सप्तभकारगला यदि  
 तदा भवति ह चकोरकनाम । ॥ २३ ॥ यानि ॥  
 हि च मत्तगजेन्द्रम् । भः सभसजा भो गुरुयुग्ममिह ॥ २४ ॥  
 मकवृत्तम्। सुनिमितनगणा लयुगुरुविरचिततनुरमरचमरी ॥ २५ ॥

४ भूतमुनीनीर्यतीरह भतनाः स्मो मनयाश्व यदि भवति तन्वी ॥



सौ सलगा विपमे दले भवितयं युजि गावुपचित्रा ॥ ३ ॥ ति  
 लोमे वहित्रा ॥ ४ ॥ विपमे प्रथमाक्षरहीनं दोधकमेवहि वेगती  
 स्यात् ॥ ५ ॥ विलोमे वर्गवती ॥ ६ ॥ अयुजोर्यदि सौ सगौ युजो  
 सभरालगौ ननु सुंदरी मता ॥ ७ ॥ कोरकिता विपमे भगणा र्ण  
 भवति समे चेत्कुसुमविचित्रा ॥ ८ ॥ विलोमे पाटलिका ॥ ९ ॥  
 पादे विपमे तजौ रगौ चेदन्यस्मिन्मनजरगाः शुकावली स्यात्  
 ॥ १० ॥ विलोमे किंशुकावली ॥ ११ ॥ आख्यानकी तौ जगुहा  
 मोजे जतावनोजे जगुह गुरुश्वेत् ॥ १२ ॥ जतौ जगौ गो विः  
 समे स्यात्तौ ज्ञौ ग एपा विपरीतपूर्वा ॥ १३ ॥ तोजोविपमे रगौ  
 यदा चेत्सभराजश्च गुरु समे विलासवापी ॥ १४ ॥ स्यादयुम्भ  
 रजौ रजौ समे च जरौ जरौ गुरुर्यदामरावतीयम् ॥ इत्याद्वैसम्  
 त्तैकदेशः । प्रथमे सजौ यदि सलौ च नसजगुरुकाण्यनंतरम् ॥ १५  
 द्वय भनभगास्त्युरथो सजसा जगौ च भवतीयमुद्रता ॥ १६ ॥ ननु  
 सकारयुगलं च भवति यदि चेत्तृतीयके अहिपतिभणितमिदं ॥ १७  
 यदि शेषमस्य सकलं यथोद्रता ॥ २ ॥ त्रयमुद्रतासदृशम्  
 पदमिह तृतीयमन्यथा जायते रनभगैर्यथितं ॥ १८ ॥ ननु  
 मनीषिणः ॥ ३ ॥ नगसगणाशेत्प्रथमे जतौ भगौ च द्वितीयपदेभौ  
 कारौ चापि ततः स्तो नो रगं वरार्थिनी तुयेऽ४ ॥ ४ ॥ आदौ चेन्मनभ  
 गुरुर्यदा नगणयकारौ जभौ ततौ गुरुयुग्मम् । तो नो रनगणगारु  
 तीयचरणेनेदिष्ठा मनजनया भवति च चतुर्थेऽ५ ॥ ५ ॥ इति विपमपूर्व  
 देशः ॥ पञ्चमं लघु सर्वत्र सतमं द्विचतुर्थयोः । पष्ठं गुरु यात् ॥ ६ ॥  
 मयं श्लोकः प्रकीर्तित इति । अस्य भेदाः ॥ ७ ॥ द्वितीयपदेभौ  
 वथ दंडकाः । नगुणयुगलमध्र चेत्सप्त रेफास्तदा ८५६५  
 शृष्टिप्रयातो भवेत् ॥ ९ ॥ प्रचितकसमभिधः स्याद्यदा ॥ १० ॥  
 उत पाः स्युस्तदा दंडकोऽसौ विशेषः ॥ २ ॥ चेदद्वैकपुर्ण



जोविशेषेण तेन तैजसद्वयेन हृद्गतदिवसविरहभरतापं सूचयंत्या  
 प्रवृद्धप्रेमप्रपूरप्रपञ्चप्रसंगेन पयोधरद्वयादिव नेत्रपयोजद्वयादि  
 पि पयःपूर्वं परित्यजन्त्याऽत्युत्पुलकाङ्गन्या मात्रा यजोदया कृतं  
 नीराजनो ब्रजजनतामोददः स्वस्त्वस्थानविनिवेशितगोधनस्तन-  
 न्मसमयपयोदानुपंगेण प्राप्तं कालिमानं दुग्धेन परिहर्तुं समागते  
 धृतशांतवेषेण शेषेणेव दोषणा कृतधेनुसेवनो ब्रजावनो वन्धुत्वे  
 कनकेन्द्रियपदासनावस्थितपत्पनविम्बे स्वास्मिन्निविजोत्पत्तिकार-  
 णजातं शीतलिमानं विधातुं विहितप्रयासस्य सुंदरपयोभवयुम्  
 स्य शंकामुद्रावयन्नरुयुगलमध्यवर्तितपनीयदोहनपात्र आरब्धो  
 हनस्त्रिलोकीमोहनः पाततलदोहधाराघातरवमित्रितगोपीगृहीता  
 त्सलेहनचलद्वीवाघण्टाभरणरणितसहवर्तिमहाककुत्कलितपृष्ठो  
 विरजस्कीकृतांगो जननीसमर्पितसपायसरसस्वन्नैरवसायितसाव-  
 तनाशनकृत्यो ब्रजे स्वल्पशशिकल्पतलप्रसूनपरिमलपरिमल-  
 तनिकुंजसदने विहारं विरचय्य सुखेन सह सावकाशं तस्थौ इत्यार्थ-  
 रचनाविशिष्टागद्यविशेषा ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥  
 वर्णमात्राप्रस्तारयोरादौ मात्राप्रस्तारमाह । आदौ विलेख्या गुरवः  
 स्तार्यस्त्वाः समायदि आदौ लघुरथान्ये च गुरुवो ॥ १७ ॥  
 प्रयमगुरोरथरे लघु दत्त्वा शेषं समानमितरेण ॥ उद्वृत्तं ॥ १८ ॥  
 द्विकलस्य चिकलस्य चतुर्पक्लस्य पंचकलस्याष्टोमेदाः

पद्मकलस्य ब्रयोदशभेदाः

॥ १९ ॥



जोविशेषेण तेन तैजसद्येन हृदत्तदिवसविरहभरतापं सूचयंत  
 प्रवृद्धप्रेमप्रपूरप्रपंचप्रसंगेन पयोधरद्वयादिव नेत्रपयोजद्वयाद  
 पि पयःपूरं परित्यजन्त्याऽत्युत्पुलकाङ्गं च मात्रा यशोदया कृत  
 नीराजनो ब्रजजनतामोददः स्वस्वस्थानविनिवेशितगोपनतत्वं  
 न्मसमयपयोदानुपंगेण प्राप्तं कालिमानं दुग्धेन परिहर्तुं समाप्ते  
 धृतशांतवेषेण शेषेणेव दोष्णा कृतधेतुसेवनो ब्रजावनो वन्धुते  
 कनकेद्रद्वपदासनावस्थितपनविम्बे स्वस्मान्निवनिजोत्पत्तिकार  
 णजातं शीतलिमानं विधातुं विहितप्रयासस्य सुंदरपयोभवयुग्म  
 स्य शंकामुद्भावयन्नरुगलमध्यवर्तितपनीयदोहनपात्र आरम्भदे  
 हनस्त्रिलोकीमोहनः पाततलदोहधाराघातरवमिश्रितगोपीण्ठीव  
 त्सलेहनचलद्वीवाघण्टाभरणरणितसहवर्तिमहाककुत्कलितपृष्ठे  
 शहृमहोक्षपरिवृद्धगर्जितनिरतरितकाष्टावकाशो ब्रजयुवतिधृताः  
 विरजस्कीकृतांगो जननीसमाप्तिसपायसरसस्वन्नेवरसायितम्  
 तनाशनकृत्यो ब्रजे स्वल्पशशिकल्पतल्पप्रसुनपरिमलपरिमिति  
 तनिकुंजसदने विहारं विरचय्य सुखेन सह सावकाशं तस्योऽत्य  
 रचनाविशिष्टागद्यविशेषा उत्कलिकाप्रायनामकाः सन्तीत्यलम्ब  
 वर्णमात्राप्रस्त्तारयोरादौ मात्राप्रस्त्तारमाह । आदौ विलेख्या गुरुः  
 स्तायांस्ताः समायदि । आदौ लघुरथान्ये च गुरुकोविषमायदि ॥  
 प्रपयगुरोरथरे द्यु दत्त्वा शेषं समानमितरणे ॥ उदृतं गुरुवृ  
 टिकलस्य दिकलस्य चतुर्गलस्य पंचकलस्याष्टोभेद  
 पद्मकलस्य व्रयोदशभेदाः

। १ । ॥१॥ द्व द्व द्व द्व द्व ॥ ॥२॥ द्व द्व द्व द्व द्व ॥ ॥३॥

पद्मकलस्य व्रयोदशभेदाः

॥४॥ द्व द्व द्व द्व द्व ॥ ॥५॥ द्व द्व द्व द्व ॥ ॥६॥



द्वृतः १३ पृष्ठांक १३ लोपे शिष्टं० ततोऽपरांकलोपाभावात्तर्मा  
लघव एवे ॥ ४ ॥ ४ ॥ त्यवसीयते चतुर्दशादिप्रश्ने चांकलोपाभावाद्वा०

त्यवादित्वमधिकप्रस्ताराभावादिति सर्वं  
शेषांकसमागणा भवांति एवं पद्मले दशमो  
भेदः कीदृगिति प्रश्ने पृष्टे १० के शेषः  
१३ लुप्ते शिष्टं ३ ततस्तृतीयांक स  
लुप्यते तत्रैव गुरुता जायते ॥ ५ ॥ इदं जा०  
तम् । एवमन्यदपि ज्ञेयम् ॥ अथ मात्रामेरु  
‘द्वयं द्वयं समं कोष्ठं कृत्वांत्येत्त्वेकमर्हं  
येत् ॥ एकद्वेकञ्चेकचतुःकमेण प्रथमे  
ज्ञपि ॥ १ ॥ शीर्पाकात्परांकाभ्या०

शेषकोष्ठान्प्रपूरयेत् ॥ मात्रामेरुरयं ज्ञेयः सर्वेषामपि द्वां  
मः ॥ २ ॥ अस्मिन्मात्राप्रस्तारे एकगुरुवो द्विगुरुव एकं  
लघवो द्विलघवः क इत्यादिप्रश्ने कति वा प्रस्तारसंख्ये इति  
प्रश्ने च मेरुणादेयमुत्तरं द्वेदो कोष्ठे समे विलिख्यांत्यकोष्ठेष्वेकमर्हं  
लिखेत् । आदिकोष्ठेषु चैकान्तरमेकांकं लिखेत् । मध्ये शून्यकोष्ठे  
च पूरणीये । एपा प्रक्रिया पूरणीयकोष्ठं शिरःकोष्ठांकपरकोष्ठस्य  
कावेकीकृत्य मध्यकोष्ठेऽको देयः । एवं सर्वत्र यावदिच्छं कोष्ठका०  
न्विरच्य मात्रामेरुः कर्त्तव्य इति क्रमो गुरुमुखाज्ञेयः । तथा च १  
द्वाले सर्वत्र गुरुः एकगुरुवः ६ द्विगुरुवः पद्म ६ सर्वलघुः ७ सप्तकर्म  
सर्वलघुः १ एकगुरुवः ६ द्विगुरुवः १० त्रिगुरुवः ४ विषमकले सर्वं  
गुरुभेदो नास्त्येव । एवमयेऽपि वीच्यम् । प्रस्तारतो विश्वासः मेरु  
रथमेककलातो नवकलांतानां लिखितो ज्ञेयः ॥ अथ मात्रापताका०  
द्विष्टसद्शा अंकाः स्थापनीयाः कलोपरि ॥ सर्वांतिमांकात्  
वामावर्तेन लोपयेत् ॥ १ ॥ एकलोप एकगुरुं द्विलोपे द्विगुरुं







पंचवर्णपताका ।

|    |    |    |    |    |    |
|----|----|----|----|----|----|
| १  | २  | ४  | ८  | १६ | ३२ |
| ३  | ६  | १२ | २४ |    |    |
| ५  | ७  | १४ | २८ |    |    |
| ९  | १० | १५ | ३० |    |    |
| १७ | २१ | २० | ३१ |    |    |
| १  | ३  | २२ |    |    |    |
| १८ | २३ |    |    |    |    |
| १९ | २६ |    |    |    |    |
| २१ | २७ |    |    |    |    |
| २५ | २९ |    |    |    |    |

नो लिखेत् ॥ ३ ॥ अत्र १ । २ । ४ । ८ उद्दे-  
एसदशांकाः स्थापिताः एपु प्रथमादेकांकं  
पूर्वीकासंभवाद्वितीयांकमारभ्यपंक्तिः पूर्व्य-  
ते । एकद्वियोगे ३ एकचतुर्योगे ५ एका-  
ष्टयोगे ९ ततः पंक्तिपरित्यागो मेरौ विष-  
रुणां चतुःसंख्यादर्शनात् । ततो द्विचतुर्यो-  
गे ६ विचतुर्योगे ७ पंचचतुर्योगे ९ पूर्वी  
गतत्वात्यज्यते । पुनर्ब्रह्म योगे १०

उद्यष्टयोगे ११ पंचाष्टयोगे १३ ततः पंक्तात्यागः ततो धस्ता-  
स्ताचतुरष्टयोगे १२ पडष्टयोगे १४ सप्ताष्टयोगे १६ दशाष्टयोगे १८  
प्रस्ताराधिकत्वात् संचार्यते । एवं पताकापूर्वत्तिः ॥ अय-  
वर्णमर्कटीविधिः ॥ वृत्तभेदकलावर्णलघुधीमुखासिद्धये ॥ मर्कटी  
कथिता प्राज्ञैस्तत्प्रकारो निरूप्यते ॥ १ ॥ पदपंक्तिर्विलिखेत्पूर्वम्-

|   |    |    |     |     |     |      |      |         |                          |
|---|----|----|-----|-----|-----|------|------|---------|--------------------------|
| १ | २  | ३  | ४   | ५   | ६   | ७    | ८    | वृत्तम् | अष्टवर्णमर्कटीयम्        |
| २ | ४  | ८  | १६  | ३२  | ६४  | १२८  | २५६  | भेदाः   | प्रस्तार्षेदाः २५६       |
| ३ | १२ | ३६ | १२६ | २४० | ५७६ | १३४४ | ३०१२ | कलाः    | प्रस्तारसर्वमात्राः ३०१२ |
| ४ | ८  | २४ | ६४  | १२० | ३८४ | ८९६  | २०४८ | वर्णाः  | प्रस्तारवर्णाः २०४८      |
| ५ | ४  | १२ | ३६  | ८०  | १९२ | ४४८  | १०२४ | लघवः    | प्रस्तारलघवः २०२४        |
| ६ | ४  | १२ | ३२  | ८०  | १९१ | ४४८  | १०२४ | गुरवः   | प्रस्तारगुरवः २०२४       |

द्वार्धोधः कमादृधः । तिर्यकपंक्तीर्विरचयेत्तासु स्वेष्टानुसारतः ॥ २ ॥  
प्रथमालपौलिखेदंकानेकद्वादिकमात्सुधीः ॥ द्वितीयस्यां द्वादिक-  
कान् द्विगुणानुत्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥ प्रथमालीगतानंकान् द्वितीया-  
ः ॥ तांकौ ॥ गुणयित्वा क्रमात्पंक्तौ तुरीयायां लिखेत्कविः ॥ ३ ॥  
। कृत्य तुरीयायांकौलिखेत्पंचमपष्टयोः । तृतीयायां लिखेदंकान्मि-



इति लभ्यते । एवं लघोरपि चत्वार एकलवबो द्विलघवः ६ विलव-  
वः ४ सर्वलघुरेक इत्येकद्वयादिलगक्रिया ॥ ॥ अथ संख्यानम् ।  
लगक्रियांकानाम् १।४।४।४।५ इत्येवंरूपाणां मिथ्रणे पोडशसंख्या  
लभ्यते । तथा च चतुरक्षरप्रस्तारस्य कियन्तो भेदा इति पृष्ठे पोड-  
शेति वदेत् । यदा ॥ ५५ उदिष्टांकसमूहे १६ सैकेपि पोडशतम्भे  
लभ्यते ॥ अर्थाद्वानमाह ॥ ननु चतुरक्षरप्रस्तारे कियति भूतले  
प्रस्तार्यते इति पृष्ठे प्रस्तारसंख्या १६ द्विगुणिता ३२ एको  
ना ३३ जाता । तथा चैकत्रिंशदंगुलिमितभूभागे स लि-  
ख्यत इति वक्तव्यम् ॥ १ ॥ अथ गणस्वरूपदेवताफलमि-  
त्रादिभावं चक्रेणाह । पुनर्मित्रमित्रादिफलं च । अन्यदप्यव-  
चहुवक्तव्यमत उपरम्यते । किञ्च छन्दसामाविर्भावः । ‘तद्वे-  
कपद्मं स उ एव विष्णुः प्रावीविशत्सर्वगुणवभासम् । तस्मिन्स्तरं  
वेदमयो विधाता स्वयंभुवं यं प्रवदांति सोभूत्’ इति भूतिमैत्रेयोक्तस्म-  
क्षाद्विष्णुरूपस्वयंभुवोपि वैवेदे वैतरिह तु ते पुरा वा  
दंडनीत्यान्वीक्षिक्यादिभिः सह श्रुतः । तथाहि ‘व्रह्मयजुः सामाप्तं  
स्यान्वेदादीन्सुखतोऽसृजत । शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं

गीतारम्यद्वात्रा भवेद्यथं प्रस्तारादस्य एतदेव मित्रोमित्रादिविशेषफलमाह ।

मन्दिरो लभ्यते इतिव्येष्म् १

|         |        |        |        |         |        |         |         |
|---------|--------|--------|--------|---------|--------|---------|---------|
| मित्र   | मित्र  | मित्र  | मित्र  | भृत्य   | भृत्य  | भृत्य   | भृत्य   |
| मित्रे  | भृत्यो | समी    | शब्द   | मित्रे  | भृत्यो | समी     | शब्द    |
| मिद्दि: | जपः    | अष्ट   | बहु    | कार्य   | सर्व   | द्वानिः | प्राप्त |
|         |        | शब्दम् | प्रिया | सिंदेहः | नाशः   |         | क       |
| सम      | सम     | सम     | सम     | शब्द    | शब्द   | शब्द    | शब्द    |
| मित्रे  | भृत्यो | समी    | शब्द   | मित्रे  | भृत्यो | समी     | शब्द    |
| वाच्य   | प्रिय  | नेष्ट  | गृह्णय | गृह्णय  | नाशः   | द्वानिः | प्राप्त |
| म्      | हन     |        |        |         | नाशः   |         | क       |

[ उन्दःपचितिः ]

माटुकाविलासः ।

(๖๒)

वक्तेभ्यः ससूजे सर्वदर्शनं । सर्वेन्म्य । अन्नीकिंका  
त्रयी वात्तां दंडनीतिस्तथैव च । एवं व्याहृतयश्चासन्प्रणवो त्वस्य  
हृत्सतः ॥ तस्योपिणगासीछोमभ्यो गायत्री च त्वचो विभोः । विषु-  
म्मांसात्स्तुतोऽनुमुद्वजगत्यस्थः प्रजापतेः ॥ मजायाः पंकिरुत्पन्ना  
वृहती प्राणतोऽभवत् । स्पर्शस्त्वस्याऽभवजीवः स्वरोदेह उदाहृतः ॥  
अप्माणमिद्वियाहुरत्स्था वलमात्मनः । स्वराः सप्त विहारेण  
वर्णति स्मै प्रजापतेः ॥ शब्दव्रह्मात्मनस्तातेति वृत्तीयस्कंधे । इह  
प्रणः सूक्ष्मरूपेण सर्वविद्यानामुद्भवो दर्शितो विशेषतो मातृका-  
रख्योत्तरं किञ्चित्स्वरूपदर्शनपुरस्तरं व्याख्यास्याम इति ॥  
इ मातृका हि चतुर्धासविन्दुका सविसर्गका सोभया केवला  
च । तदुक्तं तंवसारे । 'चतुर्द्वा मातृका प्रोक्ता केवला च  
सविसर्गं सोभया च रहस्यं शृणु कथ्यते ॥ विद्याकरी केवला च  
सोभया वृद्धिकारिणी । सविसर्गं पुनर्दा च सविन्दुवित्तदायिनी' इति ।  
केवला तु साक्षाद्रक्षरूपेव लिङसंख्यारहितत्वादव्ययरूपा च । सहजं  
वेषु लिंगेषु सर्वांसु च विभक्तिषु । वचनेषु च सर्वेषु यत्र व्यतीति  
तदव्ययम् । इत्याधर्वणीश्चितिप्रतिपादिताव्ययलक्षणयोगात् । सवि-  
सर्गं सविन्दुका सोभया च मंत्रवीजरूपा होया । 'विसर्गेण विदुना

चोभयाभ्यां या हि संगता । मातृका वीजरूपा सा मंत्रज्ञेः समुद्दहृता' इतियामलोक्तेः कानि वीजानि किं कर्मकरणि चोति पार्वता पृष्ठः शंभुरुवाच 'कदाचिन्मेरुशिरसि देवर्णाणां समाजके' मंत्रवीजम् संगेन देवाः पृष्ठा मुनीश्वरेः ॥ वीजत्वं कथमण्णनां प्रोच्यते मंत्रवित्तमैः । रमावीजं धरावीजं मायावीजं तथा परम् ॥ व्यवहारः कथमयं वक्तव्यं दयथा च नः । यतो जातं तु यद्ग्रीजं तत्त्वान्वैव तदुच्चते । वीजाद्यथां कुरोत्पत्तिः सेचनेन प्रजायते । वर्णवीजादपि तथा देवः साक्षाजपाद्वेत् ॥ इति साम्येन वीजत्वमण्णनामपि विद्यते । कल्पादौ वा यतो वर्णादाविर्भूतस्ततोऽमरः ॥ सर्वर्णे वीजतामाप तत्त्वान्वैव मुनीश्वराः ॥ 'रमाया वीजं कारणं रमावीजं, रमैव वीजं कारणं यस्थ तद्वा रमावीजम् ।' हेरुना कारणं वीजम्' इत्यमरः । इत्येवं सर्वत्र ज्ञेयम् 'तानि वीजानि कतिचिद्दक्षयामो वो हिताय वै । यथा चिपुरसुंदर्या दक्षिणामूर्त्ये पुरा ॥ उक्तानि प्रीतया भूत्या तेनोक्तानि समासतः । स्वाशिष्येभ्यश्च कृपया वीजानि प्रालग्नानि वै' ॥ तथा हि । 'पद्मा लक्ष्मीरिणाक्षी सरोरुहनिवासिनी । कमलरुक्मिणी चैव नारायणप्रियाऽपि च ॥ लक्ष्मीवीजानि सत्तैव कृपय एषपराणि तु । श्रीम् ॥ १॥ परा भूतिस्तथा लज्जा मायापि सकले कृशा । समस्तापि तथा क्षमा कृत्रिमाण्यपराणि तु । ह्रीम् ॥ २॥ कामः पञ्चेषु रेवं च मदनो मन्मथस्तथा । मारः प्रद्युम्नकंदपांकर तान्यपराणि तु ॥ कृम् ॥ ३॥ वाग्भवं मूर्द्धवीजं च चारणं चंडे श्वरः । चंद्रोपि चर्मवसनं वासनापि तथैव च ॥ चार्वाण्यपि च चमोणमसत्यान्यपराणि तु ॥ ऐम् ॥ ४॥ शक्तिः शर्माऽपि विज्ञेयं श्वच्छंके तथैव च । शक्तिवीजानि चत्वारि कृत्रिमाण्यपराणि तु ॥ ५॥ प्रणवं च तथा तारं च्यक्षंतोमापि च्यंवकः । त्रासतारवनि वीजानि प्रणवस्थ च ॥ ओम् ॥ ६॥ नमो विश्वं तथा ॥ ७॥



(६६)

मातृकाविलासः ।

[ वीजसंयहः ]

स्त्वपरो मतः ॥ लम् ॥ २३ ॥ चन्द्रः शीतांशुरिन्दुश्च शर्वरीपतिः  
व च । ताराधिपः सुधारश्मः कृत्रिमाण्यपराणि तु ॥ चन्द्रीने  
द्वे एं द्रां च ॥ २४ ॥ अर्भिर्वाचिस्तरंगच्च वंवीजोद्वा  
इष्यते । वम् ॥ २५ ॥ स्तनवीजं कुचं चैवमुरोजो हज-  
मेव च । जंवीजानि च चत्वारि कृत्रिमाण्यपराणि तु ॥ जम् ॥ २६ ॥  
शिववीजं शंभुवीजं शर्वः शंकर एव च । गंवीजानि च चत्वारि  
कृत्रिमाण्यपराणि तु ॥ गम् ॥ २७ ॥ इच्छावीजं स्पृहा  
कांक्षा लिप्सावीजं चतुर्थकम् । झंवीजान्येव चत्वारि कृ० ॥ २८ ॥ छवीर्वीं  
झम् ॥ २९ ॥ नर्तकीर्वीजमत्युग्रं वेश्यापि गणिकापि च । पण्यस्त्री  
पंच वीजानि खमिति तत्स्फुटं त्विह ॥ सम् ॥ २१ ॥ छवीर्वीं  
कांतिवीजं शोभापि सुपमा तथा । हांवीजान्येव चत्वारि कृ० ॥ २१ ॥  
मात्यो महेशानि सुरासुरनमस्त्वृते ॥ त्रोंवीजपञ्चकं चैव कृत्रिं ॥  
शुक्रवीजे द्वे त्रों लक्ष्म ॥ ३० ॥ अत्रवीजं च जीमूतमंबुदं जलं  
वनम् । वंवीजानि च पंचैव कृ० ॥ वीम् ॥ ३१ ॥ अविध्वीं  
तथा सिंधुः सांवरं सागरस्तथा । रुंवीजानि च पंचैव कृ० ॥ २१ ॥ कल्पवीं  
रंकारसुंकारयोर्भेदेन रमयिवीजं रुमविवीजं च ॥ ३२ ॥ कल्पवीं  
च संवर्त्ते प्रलयं क्षयवीजकम् । क्षामिकं क्षुरकं क्षौद्रं तथा कला-  
तवीजकम् ॥ धूम् ॥ ३३ ॥ शतम्भी इयालिका इयाला शाद्वा-  
शुप्कला तथा । वंवीजानि च पंचैव कृ० ॥ वीम् ॥ ३४ ॥ अं-  
वस्त्रवीजं च शून्यं शक्तिरिति द्वयम् । हरितं हरिणीवीजं हारिं  
वीजमेव च ॥ व्यांवीजानि च पद्म देवि वृ० ॥ अंवरवीजे आमहं  
च ॥ ३५ ॥ स्तंदः कुमारवीजं च शरजन्मा पडाननः । शां  
शीलिगीर्वीजं तथा पण्मुखवीजकम् ॥ टंवीजानि च सप्तैव कृ०  
- ॥ ३६ ॥ नाववीजं च नटनं तांडवं वृत्तवीजकम् । चंवीजानि ॥

चत्वारि कृ० ॥ चम् ॥ ३७ ॥ वेधोवीजं विधिवैक्षा स्वयंभूवीजमेव  
च । कंवीजानि च चत्वारि कृ० ॥ कम् ॥ ३८ ॥ गर्जितं स्वन-  
वीजं च स्तनितं रसितं तथा । ठंवीजानि च चत्वारि कृ० ॥ ठम्  
॥ ३९ ॥ वृष्टिवीजं च करकं वपोपलस्तु वार्पिकः । कूंवीजानि च  
चत्वारि कृ० ॥ कूम् ॥ ४० ॥ मृद्धीजं चैव हींवीजं मृत्सा मृत्सा  
च मृत्तिका ॥ हीम् ॥ ४१ ॥ प्रस्थवीजं सानुवीजं शिखरं पुष्करं  
तथा । म्लौवीजोद्धार एपैवेतदन्यः कृत्रिमः स्फुटः ॥ म्लौम् ॥ ४२ ॥  
इति दक्षिणामृत्तिविरचितवीजकोशसारः ॥ अथास्योदाहरणा-  
न्यपि तछिखितान्येव कानिचिछेषामः ॥ तत्रादौ त्रिपुरामंत्रोद्धारः ॥  
त्रिरोदसंभवा भूतिः कामं वाग्भवमेव च । शक्तिः प्रणवलज्जेपि  
लक्ष्मीः शत्त्यादिकं ततः ॥ विपरीततया प्रोक्ता विद्याथ्रीः पो-  
द्वाक्षरी । त्रिकूटा सकलाभद्रे विद्येयं पोडवाक्षरी ॥ इत्युद्घाम-  
॥ ॥ रुद्रयामलेऽपि । हरिणाक्षी तथा माया कामं चैवाथ वास-  
ा । शरत्त्वयक्षं तथा क्षामा लक्ष्मीः शत्त्यादिकं ततः ॥ विपरी-  
तया प्रोक्ता विद्याथ्रीः पोडवाक्षरी ॥ वामकेश्वरेऽपि । लक्ष्मीः  
रा मदनवाग्भवशक्तियुक्ता तारं च भूतिकमला कथितापि वि-  
गा । शत्त्यादिकं तु विपरीततया च प्रोक्तं श्रीपोडवाक्षरविधिः  
गुभमस्तु पूर्णः ॥ इति ॥ कूटव्यमत्रापि न ग्राह्यं तंत्रांतरसंमतेर-  
यथा पोडवाक्षत्वं न स्यात् । कूटव्यं वाग्भवकूटकामराजकूटशक्ति-  
रुभेदात् । ककारएकारईकारलकारमहामाया इति वाग्भवकूटम् ।  
कारसकारककारहकारलकारमहामायाः कामराजकूटम् ।  
कारककारलकारमहामायाः शक्तिकूटमिति भेदव्यम् ॥  
त्स्वरूपम् ॥ कएङ्गलहीं हसकलहीं सकलहीं श्री-  
र्हीङ्गाएऽसोः ओहींथीसोः ऐङ्गोहींथ्रीम् ॥ अथ लक्ष्मीमंत्रो-  
पतेऽन्यथा पोडवाक्षर्यायातापत्तेः ॥

१ कूट समृहस्तस्यैकत्वादिकत्वमेव पञ्चानां पण्णा चतुर्णा च वर्णानां ग-  
पतेऽन्यथा पोडवाक्षर्यायातापत्तेः ॥

द्वारः ॥ तदुक्तं रुद्रयामले । हीरणाक्षी परा व्यक्षं लक्ष्मीवीर्णं  
 चयं त्विदम् ॥ विपरीततया प्रोक्तं सत्वरं फलदायकम् ॥ शामांशंकारी  
 नीरं च तर्देते द्विजसत्तम् ॥ अथेतत्स्वरूपम् ॥ ओऽह्नीश्रीलक्ष्मिमहा-  
 लक्ष्मिसर्वकामप्रदेसर्वसोभाग्यदायिनि अभिमतं प्रयच्छसर्वं सर्वं  
 सुरूपे सर्वदुर्जयविमोचिनि ॥ ह्रींसः स्वाहा ॥ अथ सरस्वतीमंत्रोद्भाव-  
 शारदापटले । तारं लज्जा वाभवञ्च परा प्रणव एव च । वीजं ९  
 शशिरो ज्ञेयमते ज्ञेयं नम इति ॥ अथ स्वरूपम् ॥ ओऽह्नीश्रींह्रींत्रो-  
 वाग्देव्यै नमः ॥ अथ तारामंत्रोद्भारो भैरवसर्वस्वे ॥ तारं व्योपं तत्त्व-  
 कांता माया वाग्भवमेव च । कूर्चै चैव महेशानि ह्यन्ते फट्ट्वयं  
 तथा ॥ अथ स्वरूपम् ॥ ओऽह्नींह्रींह्रींऐंहूंउत्तरोफट्ट्वाहा ॥ ततो  
 भुवनेश्वरीमंत्रोद्भारः कुञ्जिकासर्वस्वे । प्रणवश्च तथा माया कमल-  
 मन्मथस्तथा । अंते विश्वं नाम मध्ये प्रोक्तं तु भ्यं महेश्वरि ॥ प्रोक्ते  
 यं भुवनेश्वर्या मनुस्तुर्याक्षराभिधः ॥ अथ स्वरूपम् ॥ ओऽह्नीश्री-  
 श्रींभुवनेश्वर्यै नमः ॥ अथ मातंग्याः कुलसिद्धसंताने । तोमा काली  
 तथा लक्ष्मीवीर्णगुराद्वयमेव च । चारुकं चयवीजानि ह्यादौ प्रोक्तानि  
 शंभुना ॥ अन्त्ये जिह्वा तथा पद्मं लज्जां नीरजमेव च । वासना पद्म-  
 चैव वनं प्रोक्तं तु शूलिना ॥ अस्य स्वरूपम् ॥ ओँकारोऽप्रींप्रींश्रीं  
 च्छिष्ठचांडालिनि देवि महापिशाचिनि मातंगि देवि क्रौंठः ह्रीं  
 ह्रींठः स्वाहा ॥ अथ शारिकामंत्रोद्भारस्त्रिपुराशिरोमणौ ॥ तारं माया  
 थिया कूर्चै सिंधुरं शून्यमेव च । कल्याणं शारिकादेव्या वीजं  
 सप्ताक्षरं स्मृतम् । अन्त्ये स्तंभं च विज्ञेयं शारिकामंत्रमुत्तमम् ।  
 अस्य व्यक्तिः ॥ ओऽह्नीश्रींहूंह्रां आंशंशारिकाथैनमः ॥ अथ राज्ञीमंत्रं  
 द्वारः । तारं लज्जा त्रियमग्निः कामः शक्तिः पदक्षरः । वीजं च पद्म-  
 श्रो ज्ञेयं ततः पछ्वमुद्धरेत् ॥ भगवत्यै तथा राज्ये ह्यते माया ॥  
 ९ म् । एभिः सह मनुः प्रोक्तो राज्ञः पंचदशाक्षरः ॥ सह



मातृकाविलासः ।

[ वर्जितसंग्रहः ]

हया युते ॥ स्वरूपम् । श्रीहीन्हीन्हेव ब्रवैरोचनीयेहीन्हीन्फदस्वाहा ॥  
 अथ दक्षिणाकालीमंत्रोद्धारः इयामारहस्ये । कुंतीत्रयं तीरुणम्  
 क्षामयुग्मं ततोभिधाम् । दक्षिणाकालिकेत्येवमंते कालीत्रयं पुनः ॥  
 कूर्चयुग्मं परायुग्मं पयथैव सुरेश्वरि । दक्षिणाकालिकायाश्वहुद्ग्रां-  
 विंशकार्णकः ॥ स्वरूपम् । क्रीकांकहिंद्वंहीन्हीन्दक्षिणकालिकां-  
 कींहिंद्वंहीन्हीन्स्वाहा ॥ अथ इयामामत्रः इयामातंत्रे । हरिणशीं त-  
 चय ॥ अमृतं स्वावय स्वाहा इयामामत्रं उदाहृतः ॥ उदाहरणम् ॥  
 श्रीहीन्हीन्हेक्केकौक्रः सुधारसेइयामेकृष्णशापं विमोचयामृतं स्वाव-  
 य स्वाहा ॥ अथ कालरात्र्या उद्धारस्तत्कल्पे । प्रणवो वासना माया  
 मन्मथः कमला तथा । वीजं पञ्चशिरो ज्येष्ठं ततः पछवमुद्धरेत् ॥  
 ततो मध्येऽभिधां त्यक्त्वा ह्यते सर्ववशं कुरु । नीरं देहियुगं चैं  
 मध्ये त्यक्त्वाभिधां ततः ॥ गणेश्वर्यै तथा चांते विश्वं च सुः  
 दाहृतम् ॥ अस्य व्यक्तिः । ओ॒ए॒ही॒कू॒र्थी॒क्री॒कालै॒श्वरि॒ सर्वजनम्  
 नोहारिणिसर्वमुखस्तंभनिसर्वराजवशंकरिसर्वदुष्टनिदौलिनिसर्वस्त्री  
 पुरुषाकांपिणिवंदीशृंखलास्त्रोटय२ सर्वशून्भंजय२ देव्याक्रिं  
 लय२ सर्वान्स्तंभय२ मोहनास्त्रेणद्वेषिणिसुच्चाटय२ स्त्री  
 वशंकुरुस्वाहा देहि२ सर्वकालरात्रिकामिनिगणेश्वर्यैनमः ॥ अथा  
 नपूर्णामंत्रोद्धारः कामेश्वरीतंत्रे । तारं परापि कमला मीनकेतन ए  
 च ॥ विश्वं ततो भगवति माहेश्वरि ततः पुनः ॥ अनपूर्णे ठद्यं च म  
 तुर्विंशात्तरः स्मृतः ॥ व्यक्तिरस्य । ओ॒ही॒र्थी॒कू॒र्थी॒नमो॒गगवतिः॒  
 है॒श्वरि॒ अनपूर्णे॒स्वाहा॒ ॥ अथ कुलवागी॒मंत्रोद्धारो॒ सुंडमालायाः॒  
 प्रणवं मदृनं चैव स्कंदं नारायणप्रियाम् । तटं तथेच्छावीजं १  
 ततः पछवमुद्धरेत् ॥ झपहस्ते ततः पथात्कुलवागी॒श्वरि॒ तवा॒ ।  
 लंते च वासनावीजं पद्मं कांशापि नीरजम् ॥ नर्तकीर्वजमंभोजं ८०



णाक्षीव्योपः स्कंदं तथैव च। पुरमापस्तथांतेच सतपष्टचक्षरो मनुः।  
 उदाहरणम् । ओऽहौं हनुमतेरामदूतायलंकाविध्वंसनायां जनीं  
 भर्त्संभूतायशाकिनीडाकिनीविध्वंसनायकिलिबुबुकरेणविभीषणाय  
 हनुमदेवायओहौं श्रीहौंहाँफदस्वाहा ॥ अथ भैरवस्य रुद्रयामले।  
 प्रणवं मन्मथं चैवमत्रवीजसमन्वितम् ॥। अविधवीजं कल्पनीं  
 शतघ्रीवीजसंयुतम् ॥ मायां मध्येऽपि बटुकभैरवायस्मृते  
 तथा । अन्ते यो भैरवस्यायं मनुरप्तादशाक्षरः॥उदाहृतिः । ओहौं  
 वौरुंध्रुंभ्रोहौंबटुकभैरवायनमःस्वाहा ॥ अथ महामृत्युंजयस्याम  
 लहर्याम् । व्यक्षं हृजं शक्तिशोभेऽपि शंकां मा तस्मादै पालये  
 तथैव । तस्माच्छक्तिः खं शरद्युजज्ञासौ मंत्रोद्धारं देवमृत्युंजयस्य  
 ओङ्गूसः हंसः मांपालयपालय सोहंसः जूं ओम् ॥ अथ सुग्रीवस्य  
 गमशिरोमणी । तारं माया वाग्भवं मन्मथं च शक्तिर्मध्ये न  
 त्यक्षत्वा तथांते। कालीपद्मो कूर्चंपद्मौ समस्तापद्मौ नीरं ह्येपुर्ण  
 वमंवः ॥ स्वरूपमाह । ओहौंएँ कूंसः सुग्रीवदैवताय कीठः हं  
 स्वाहा ॥ अथ नवग्रहमंत्राः । आदित्येदुजशुक्राश्च गुरुः  
 परमेश्वरि । एते पञ्च महेशानि पञ्चेषोवाणिदेवताः॥भौमार्किराद्द  
 व्यव व्रय एते सुनीथराः । देवस्य खण्डपरशोलौचिनव्रयदेवताः॥  
 केतुश्च परमेशानि भूमेदेवः प्रकीर्तितः । एते नवग्रहाः प्रोक्ताः शंभुः  
 रुद्रयामले ॥ तत्रादौ पञ्चस्त्रादित्यस्य विश्वनायसारोद्धारे । प्रण  
 चांवरं दद्मीव्योमवीजं तथैव च । वीजं तुर्यशिरो इत्येयं मनुद्देशः  
 क्षरः स्मृतः ॥ ओहौःश्रीआग्रहापिराजायादित्याय स्वाहा ॥  
 वय बुधस्य स्वतंत्रैप्रणवं च तथा स्कंदं रसज्ञा च पडाननः॥  
 श्रीपि ग्रहनायाय बुधाय च ततः परम्॥नीरञ्च सोमपुत्रस्य मनुश्च  
 शावरः॥स्वरूपम्॥ओद्वांकीठं ग्रहनायाय बुधायस्वाहा ॥ वय उ  
 स्वागमदीरोमणी॥प्रणवं मुद्देशीनं च स्तनवीजसमन्वितम्॥गिरि



मातृका॥  
 अँहोङ्करलपिणकेतवेषेंसौः स्वाहा  
 मातृकाकमतो वीजान्याह । शृणु देवि  
 स्त्रम् । मुनीनां सूचितो यथा दक्षिणाम्  
 आत्मवीजमकारं च स्वान्तहद्वीजमेव च  
 पैतामहमिति स्मृतम्॥ अपरमनृतं ज्ञेयमकारा  
 न्यं समंवरं व्योम वैष्णवं चोति भापितम् ।  
 न्युदुकं भैरवतंत्रके ॥ आ ॥ २ ॥ इन्द्रवीजं तथा  
 ववा हरिः । शैवं चेकारवर्णस्य कृत्रिमं त्वपरं वदेन  
 उद्धिवीजं तथा मेधा धीवीजं च मतिस्तथा । एंद्रं तदा  
 कारस्त्यानृतं परम्॥ ई ॥ ४ ॥ रुतिवीजं तथा नंदा वान  
 लकम् । सोयंसुकारवीजाने कृत्रिमाण्यपराणि तु॥३॥  
 जं तथा केऽनं मुद्दंजं च शिरोरुहम् । एंद्रवं त्वपृतं चान्न  
 मुरेन्द्रिरा॥५॥६॥ पापवीजं तथा पापं किल्पिषं कल्पपंतप  
 वीजं त्वनां परम् ॥ अग्नरस्य रदस्येऽलिङ्ग  
 वीजं त्वनां परम् ॥



मात्रकाविलासः ।

[वीजसंयहः]

ख्यातं स्वतंत्रे देववंदिते ॥ टम् ॥ २७ ॥ पर्योजं पंकजं पञ्चं नीरजं  
चाम्बुजं तथा ॥ ठडीजानीह पंचेव कृञ्जिमाण्यपराणि वै ॥ अंजनीवी-  
ठम् ॥ २८ ॥ सिंहिका सरसीवीजं रेणुकावीजमेव च । अंजनीवी-  
जकं ख्यातं डकारस्य मया शिवे ॥ ढम् ॥ २९ ॥ वायुवीजं चानि-  
लं च मरुद्वीजं समीरणम् । समीरञ्चाशुग्रं झेयं वातं व्यसनवीज-  
कम् ॥ डकारस्य मयाख्यातमसत्यं यदतः परम् ॥ ढम् ॥ ३० ॥  
भैरवतंत्रे यमापि वायुवीजमुक्तम् ॥ आशुगवीजे द्वे णं छं च ॥ मार्गणं  
वाणवीजं च पञ्चिणं चाशुग्रं तथा । एकारस्यानृतं चान्यत्प्रोक्तं  
भैरवतंत्रके ॥ षम् ॥ ३१ ॥ रात्रिवीजं तमोवीजं तामसीवीजमेव  
च । क्षपा च क्षणदावीजमसत्यं यदतः परम् ॥ कुञ्जासर्वस्वं  
अंथे तकारस्य स्मृतं शिवे ॥ तम् ॥ ३२ ॥ विलवीजं च विवरं  
सुपिरं नागलोककम् । थकारस्य मयाख्यातं तंत्रे वै कुञ्जिकाण्डे ॥  
थम् ॥ ३३ ॥ चक्रिवीजं व्यालवीजं सर्पः काकोदरोरगौ । भोगि-  
वीजं भुजंगं च भुजंगमामिति स्मृतम् ॥ दकारस्याएवीजानि ह्य-  
नृतान्यपराणि तु ॥ दम् ॥ ३४ ॥ पुष्पवीजं प्रसूनं च प्रसूतिः  
सुप्रजास्तथा ॥ धकारस्यानृतं चान्यविपुरातिलके स्मृतम् ॥ धम्  
॥ ३५ ॥ क्षारबीजं च लवणं सेंधवं सूकरं तथा ॥ वाराहञ्च नकारस्य शि-  
रो मणौ मयोदितम् ॥ नम् ॥ ३६ ॥ मत्स्यवीजं मीनवीजं शफरीवीजमेव  
च । इषपवीजं मयाख्यातं यस्य च्छिन्नाशिरोमणौ ॥ पम् ॥ ३७ ॥ कूर्द-  
वीजञ्च कमठं कर्कटोऽपि कुलीरकम् । कच्छपं च फकारस्य शारदा-  
पटलोदितम् ॥ फम् ॥ ३८ ॥ अर्मिवीचिरस्तरंगञ्च वकारस्य उर्गं पनम् ।



नमः सर्वांगे ॥ अथकरन्यासः । ओंअंकंखंगंवंडं आंअंगुष्ठाभ्यां  
नमः । ओंइंचंछंजंझंभं ईतर्जनीभ्यां नमः । ओंऊंटंठंडंडंणं ऊंमध्य-  
माभ्यांनमः । ओंएंतंथंदंधंनं ऐंअनामिकाभ्यां नमः । ओंआंपंफ-  
वंभंभं ओंकनिष्टिकाभ्यां नमः । ओंअंयंरलंवंशंपंसंहंकं अःकरत-  
लकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥ एवं ह्यादि शिरसि शिखायां कवचयोर्नेत्रयोरत्ते-  
च न्यसेत् नमः स्वाहा वपद्वं हुंवौपदूफद्वं इति क्रमेण न्यासांते वाच्य-  
म् ॥ अथ ध्यानम् । हुंकारे धनुरब्जपंकजमुखे श्रीविक्रवक्षस्थले इंडा-  
पिंग लम्ब्वपूर्णनयने व्रह्मांडपिंडोदरे ॥ इंदूवाणधनुर्द्वरां वहुविधां  
पुष्पायुधां मोहिनीं तारापूर्णमुखीं भजे शिवकरीमंतर्महामातृके ॥  
इति ध्यात्वा मानसोपचारैरर्चयेत् । ते च लंपृथिव्यात्मकं  
गंधं कल्पयामि । कनिष्टिकाभ्यां मुद्रां प्रदर्श्य, हमाकाशा-  
त्मकं पुष्पं तर्जन्यंगुष्ठाभ्यां, यंवाय्यात्मकं धूपं तर्जन्यंगुष्ठाभ्यां,  
रंवह्नयात्मकं दीपं मध्यमांगुष्ठाभ्यां, वममृतात्मकं नैवेद्यं  
ग्रासमुद्रया, शंशत्तयात्मकं तांवूलं योनिमुद्रया सांगाये  
सायुधायै सवाहनायै समुद्रसहितायै छत्रं चामरं पादुके दर्पणं च  
भगवत्या अन्तर्मातृकादेवतायै नमः प्रीयतां सा । आधारे लिंग-  
नाभो प्रकटितहृदये तालुमूले ललाटे द्वे पञ्चे पोडशारे द्विदशद-  
लयते द्वादशाद्वें चतुर्पक्षे ॥ नासांते वालमध्ये लफक्तम्भिन्ने कंत्रदे-



मूले णनमो दक्षांगुल्यये तंनमो वामोरुमूले थं० वामजानुनिं दं०  
 वामगुल्फे धं० वामांगुलिमूले नं० वामांगुल्यये पं० दक्षकुक्षो फं०  
 वामकुक्षो वं० पृष्ठे भं० नाभो मं० उदरे यं० हृदये रं० कंठे छं०  
 दक्षवाहुमूले वं० वामवाहुमूले शं० हृदयादिदक्षकरायांतं पं० हृद-  
 यादिवामकरायांतं सं० हृदयमारभ्य दक्षपादपर्यतं हं० हृदयमा-  
 भ्य वामपादपर्यतं क्लं० पादादिशिरःपर्यतं, क्षं० शिरश्रृति  
 पादान्तम् ॥ इतिवहिर्मातृकान्यासः ॥ अथ विलोममातृका च ॥  
 क्षेक्लंहंसंपंशंवंलंरंयंमंभंवंफंपंनंधंदंथंतंणंडंठंठंभंझंजंछंचंडंचंगंखंकं  
 अःअंबौओऐंएंलंटंत्रंउंठंउंईंइंआंअं ॥ इतिविलोममातृकाः ॥ अनु-  
 लोमाया आदौ विलोमाया अंते चैकैकमालाजपात्सादुमशक्योऽपि  
 भंत्रोऽश्चाटिति सिध्यतीत्युक्तं मंत्रशास्त्रे । किञ्च भुवने श्वरीस्तवे तु क्षादप्रे-  
 लकारोन गृहीतस्तत्रास्या वीजांतरसंकलनेजपात् सारस्वतसि-  
 द्विरच्युक्ता । आदौ वामभवमिंदुविंदुमधुरं भांते च कामात्मकं योगाति



मूले पन्नमो दक्षांगुल्यये तन्मो वामोहमूले थं० वामजानुनें द०  
वामगुल्फे थं० वामांगुलिमूले नं० वामांगुल्यये पं० दक्षकुक्षो फं०  
वामकुक्षो वं० पृष्ठे भं० नाभौ मं० उदरे यं० हृदये रं० कंठे लं०  
दक्षवाहूमूले वं० वामवाहूमूले शं० हृदयादिदक्षकराग्रातं पं० हृद-  
यादिवामकराग्रातं सं० हृदयमारभ्य दक्षपादपर्यतं हं० हृदयमार-  
भ्य वामपादपर्यतं छं० पादादिशिरःपर्यतं, क्षं० शिरःप्रभृति  
पादान्तम् ॥ इतिवहिर्मातृकान्यासः ॥ अथ विलोममातृका च ॥  
क्षङ्कंहसंपंशंवंलंरयंमेभंवंफंपंनंधंदंथंतंणंढंठंभंझंजंछंचंडंघंगंसंकं  
अःअंओओऐंएलंलंनंक्रंजंईंआंअं ॥ इतिविलोममातृकाः ॥ अनु-  
लोमाया आदौ विलोमाया अंते चैककमालाजपात्सादुमशक्योऽपि  
मंत्रोऽशाटिति सिध्यतीत्युक्तं मंत्रशास्त्रे ॥ किञ्च भुवने श्वरीस्तवे तु क्षादये  
लकारोन गृहीतस्तत्रास्या वीजांतरसंकेलोनजपात् सारस्वतसि  
द्विरच्युक्ता ॥ आदौ वामभवमिदुविदुमधुरं भांते च कामात्मकं योगाते  
कपयोस्तृतीयमिति ते वीजत्रयं ध्यायता । सार्वं मातृकया विलोम  
विपमं संधाय वंधच्छिदा वाचां सर्गतया महेश्वरि मया मात्राशतं  
जप्यते ॥ ३ ॥ अस्यार्थः ॥ हे महेश्वरि मयांतर्गतया वाचा  
मात्राशतं जप्यते । किंभूतेन इत्यमुना प्रकारेण तत्त्व वीजत्रयं  
विलोमविपमं यथा स्यात्तथा मातृकयोऽसह संधायानुवध्य  
ध्यायता । इतीति किंम् आदौ अङ्कारादौ इंदुविदुमधुरम् इंदुश्चंद्र-  
कला विदुरखुस्वारस्ताभ्यां मधुरं मनोहरं वामग्रवं वामवीजमैमि  
त्यर्थः । च पुनः भांते भकारांते कामात्मकं कुंकारं तदनु कप-  
योयोगाते क्षकारांते तृतीयं शक्तिभीजं सौः इति । तद्यथा । ऐं  
“ईंउंऊंनंहुलंलंएओओअंअः कंखंगंवंडंचंछंझंभंझंभंझंठंड-  
तंथंदंधंनंपंफंवंभंमंयंरंलंवंशंपंसंहंकंसोः ॥ प्रतिलोमतो यथा ॥ सौः  
मंभंवंफंपंनंधंदंथंतंणंढंठंभंझंझंचंडंघंगंसंकं



सुकिश्यालनिर्ब्रह्मत्यादयश्च ऋकारार्था हस्त्यादयश्च ल्घवाच्या  
मत्स्यवीतरागादयो ल्घवाच्या देहांगवालादय एकारार्थाः कुमारोद्भ-  
वादयश्च ऐवाच्या धरणीनाथकुलालवानरादयश्च तथा ओकारार्था  
श्रुवागस्त्यादयस्तथा औवाच्या नरनारीस्त्वृलसूद्धमादयश्च तथा अं-  
वाच्याः सुखदुःखादयश्च एते सर्वे अएव वासुदेवस्वरूपा एव' सर्ववा-  
क्यं सावधारणम्' इति न्यायादत्रेव कारोज्ञेयः । " पुरुप एवेदः सर्वम्"  
इति श्रुते, 'सर्वं सालिखदं ब्रह्म' इति श्रुतेश्च " सकलमिदमहं च वासु-  
देवः " इति वृद्धानुशासनाच्च । ' वासुदेवात्परो ब्रह्मन् चान्योर्योत्ति  
तत्त्वतः' इति श्रीभागवतद्वितीयस्कंधोक्तेश्च अकारो वासुदेवः इत्ये  
काक्षरात् ॥

अथाकारादिपोडशस्त्वराणां ब्रह्मादिवाचकत्वे सोभारिसुनि-  
वर्यप्रणीतश्छोका लिख्यन्ते । तथाहि । आः कृष्णः शंकरो ब्रह्म  
शक्रः सोमोऽनिलोनलः ॥ सूर्यः प्राणो जनः कालो वसन्तः प्रण-  
द्विष्टः ॥ १ ॥ आः स्वयभूरिभो वाजी खेदः शंकरवासवौ  
सुखादः समः प्राज्ञो नवासश्चणकः सुतः ॥ २ ॥ इः कामः स्याणुर्ग  
द्वोऽकोंवरुणः पादपो द्विपः ॥ शुचिः श्रीमानब्जवालौ विरिच्छिः कृति  
कासुतः ॥ ३ ॥ ईरीश्वरो भवेच्छन्तुः पुरुपः करुणोरुणः ॥ अप्रजा-  
सुप्रजाः शशुभुकुरो नकुलोऽकुलः ॥ ४ ॥ उर्गेरीपतिरुः कालः तेजु  
नाथः परायणः ॥ नारदोऽकोंऽनिलः पाशी मार्कण्डेयोऽथरावणः ॥ ५ ॥  
ऊः परेतोऽज ऊस्त्वप्ता विवस्वानग्निसारथिः ॥ वह्निर्निशाकरः पूर्णे  
दरिद्री सरमाधिपः ॥ ६ ॥ ऋर्निर्ब्रह्मतिर्नलो नाथः सग एवाय  
वासुकिः ॥ इयालः पितृप्वसुः पुत्रोऽदितिर्दितिरुमा रमा ॥ ७ ॥  
अत्र ऋद्दित्यार्पत्वात्सोराकाराभावः । ऋहून्तपेधो भवः पूर्पा करुणोऽ-  
मरराडजः ॥ करी तरुनरः पाप्मा विद्वानय रमापतिः ॥ ८ ॥  
लर्मत्स्योऽरुणवर्णः स्यात्क्षीवः पापी पराजितः ॥ वीतरागोऽप्य-  
पाखंडी कमलं मरणं च ल ॥ ९ ॥ इदमपि पूर्ववद् । लर्महत्मा



भयं मीनाति हिनस्तीति पफवभमः । अत्र मीनातेर्डप्रत्ययः । 'भो  
भद्रे च भयेऽपि च' इति कोशात् । स च हरिः 'मत्यो मृत्युव्यालभीतः  
पलायँल्लोकान्सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत् । त्वत्पादाब्जं प्राप्य यद्यच्च  
याऽद्य स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति' ॥ इति श्रीदेवकीदेव्युले  
तस्मिन्पफवभमे श्रीहरौ । उ वितकें । अं सुखं रातीत्यरो भक्तियोगः  
'न मे भक्तः प्रणश्यति' इति श्रीसुखोक्तेः । तं लाति ददातीति  
अरला हरिकथा तया तथा । आतो लोपः । गोपावत् । 'कैवल्य-  
संमतपथस्त्वथ भक्तियोगः को निर्वृतो हरिकथासु रत्नं न  
कुर्यात्' इति द्वितीयस्कंधोक्तेः । ए प्रीतिमट प्राप्नुहि ॥  
प्रीतौ' इति सौभर्युक्तेः । अत्र उकारेकारः प्रश्नेष्यः ।  
स च 'अमानोनाः प्रतिपेधे' इत्युक्तत्वान्निपेधार्थको ज्ञेयः । अ कोर्यः  
मा कस्व गर्वं कुरु कस्वे हसने हसनं हासो गर्वश्च धनपरिजनादिर्गत-  
त्यजेत्यर्थः । चोत्र पुनरर्थैच पुनस्तथ यथार्थभापणं कुरु तथे यथार्थ-  
भापणे धातुरेदित् । च पुनः छश्चजश्च झश्चैपांसमाहारश्चजझं तज्जभूम-  
ग्निरूपमिति छजझभूक्तिवत्वं चात्रातथा च । 'छः श्चले जोऽपवादे च  
झो झाकटे जोऽग्निरूपेच' इति कोशादेकदेशोच्चारणन्यायाच्च एतेषां  
ग्निरूपत्वादेतानि च न दध मा कदापि कुर्विति भावः । दध धात्वे  
परस्मैपद्यप्यस्ति धातुपाठे । छलादेशाच्चरणान्नरकाग्निदाहस्यादर्थः  
भावित्वात् । ठो मध्वरिरिति कोशाद्विष्णुर्डोऽवर्यः पूज्यो येषां तां  
न्दते प्राप्नोतीति ठडद् सत्संगिकुलं तज्जाण प्राप्नुहि एतदपि कुर्वन्त-  
सत्संगी भवेति भावः । न विद्यते शं येषां तेऽशाः पापिनस्तैः पो र्णो  
युद्धं यस्य सोशापस्त्तसंबुद्धो तथा । पापिसंगरहितो भवेति भावः ।  
क्षयति नश्यतीति क्षस्तत्संबुद्धो हे विनाशशील यद्वाहे क्षांतं तं  
फज्जभमे सह तृतो भवा । सह तृतो दिवादिर्गणकार्यस्यानित्यताव्  
नश्यस्तत एव ते सर्वमाभिलपितं सेत्स्यतीति भावः । 'पो रणे' इति



च हुमिति वर्मवीजं प्रसिद्धमत एवांगन्यासे कवचाय हुमिति पद्म  
एवमन्यत्रापि वहुधोक्तं विस्तरभियैवेह न प्रपञ्चयते । भक्तपुला  
न्याय एवात्र सूचितः । अत एव श्रीलज्जीवगोस्वामिचरणैरपि वैष्ण  
वव्याकरणे हरिनामामृताख्ये नारायणादुद्धूतोऽयं वर्णक्रम इति  
त्वा अकारमारभ्य क्षान्ताः पञ्चाशद्वर्णा लिखिताः । किञ्च सूर्य  
क्रमतः संहारकमो हि प्रतिलोमो भवति स च सप्तमस्तकं धे श्री  
गवते श्रीनारदेन दर्शितः । 'वाचं वर्णसमावाये तमोंकारे स्वरे न्यं  
त् । ओंकारं विंदौ नादे तं तं तु प्राणे महत्यमुम्' इति । किं  
केरलशास्त्रेष्यमेव वर्णोत्पत्तिक्रमोऽगृहीतः । तथा हि । 'काद्याष्टा  
नव नव पाद्याः पञ्च प्रकीर्तिताः । याद्योऽष्टौ नभौ पूर्णे केवला  
स्वरा आपि ॥' इति । इहापि ककारमारभ्य झकारान्तास्तथाटका  
मारभ्य धकारांता नव नव ग्राद्याः । यकारमारभ्य हकारांता वा  
ग्राद्याः । नकारभकारयोः स्थाने पूर्णशब्देन विंदुर्ग्राद्यस्तथा वर्णोत्पत्ति  
रामिलितस्वरस्त्यानेऽपि विंदुरेव ग्राद्य इति । ककारादिकमानंग  
कृतावियमपि संख्या विषुता स्यादित्यलं प्रपञ्चेन । प्रकृतमनुसर  
मः । ककाराद्य ऋकारादि मात्राचतुष्कं विहाय परिशिष्टादश  
कारादिमात्रासंव्योगेन द्वादशधा भवन्ति तांश्च मुनिव्यर्यसोभर्ति  
पीतार्थं युतानधुना वर्णयामः ॥ तथा हि ।

ककाकिकीकुकूकेकोकौकंकः ॥ १ ॥

को व्रजा का महादुग्गां, किः सुग्रीवो रमापतिः ॥ आसंडलोऽ  
भूत्योऽग्रेव्यधिः किषुंक इत्यवपि ॥ १ ॥ कीर्गजस्तुरगो व्याघ्र  
जाग्न्दो जीवः पिपीलिका । धरारमाच द्विद्वृद्धः पुरुषः पाठ्य  
गोः ॥ २ ॥ कुः पृथ्वी कुः कुचः कृलं कृः कृत्या भूय  
दि. श्व ॥ केः प्राणोऽज्ञो मदः सारः कुण्डः केः प्रणतः शुचिः ॥ ३ ॥  
फोः कुरुक्षुर्गे जनः इयावः पानशोको च कोवृंपः ॥ कं शिरः ॥





[दादराक्षर्यर्थः]

मातृकाविलासः ।

(८९)

वीभत्सुर्मुगः सूहमो डीर्घपः कुकलाशयः ॥ उःसूकरोऽथ  
इन्ध्यर्थो छेः सूतो छेः पराशरः ॥ १७ ॥ डोशसिंहोऽथ छेः  
शूर्पोऽरुणोवाहिसुखो रविः ॥ डंधंटा वरुणस्तोयं शब्दातुकरणं  
तथा ॥ १८ ॥ इः प्राणुकोऽपि हरणे हनने च निषेधने ॥

चचाचिचित्तुचूचेचौचोचौचंचः ॥ ६ ॥

अथ चकारपंत्त्यर्थमाह । चश्चौरे वासवे चंद्रे चंदने चलनेऽ-  
पि च ॥ १९ ॥ चा कद्मरदितिः कन्या चिः पूषा माप एव च ॥  
गीर्वापिर्दन्तिपनी स्यात् कीलालं पविः शरः ॥ २० ॥ भीरुश्शर्मार्ग-  
गोपे स्यात्पक्षी भूमिजराङ्गविः ॥ चेः कृष्णोऽर्कस्तुरापाङ्गच चेः  
मो विनतासुतः ॥ २१ ॥ चोः पाखंडी च चौर्धेनुरन्दानग्निरुद्धवः ॥  
चं चरित्रं सुखं दुःखं कद्मलं कमलं पयः ॥ चः प्राणुकोऽपि  
चपलश्वटकश्वतुराननः ॥ २२ ॥

छाढ्याछिछीछुद्युद्येछोछोछंछः ॥ ७ ॥

अथ छादेः ॥ द्यस्तोमद्यलिकद्यन्द्य रुद्रम्भिः कुलालकः ॥ छी-  
विष्णुद्युः शुकद्युर्ध्वंद्येः पार्श्वा छेः सुरालयः ॥ २३ ॥ द्योः पूर्णोऽलं-  
कुतो वायुद्योः सर्मारस्तरुनंगः ॥ द्यमच्चिर्भूतलं स्वः स्यात्कूलं कूटं  
एवं कुलम् ॥ २४ ॥ द्यः प्राणुकोऽपि च्छदनद्यदाकारद्यवियुतः ॥

जजाजिजीचुज्जजेजोजोजंजः ॥ ८ ॥

अथ जादेः ॥ जो जनो जनको राजा जा योनिजिः सदाशिवः ॥ २५ ॥  
नैष्णुः करुणो यूका शुविष्णुर्जः कुलालकः ॥ जेः शुनी जोऽय जे:  
पूषा वहिजोः कमलासनः ॥ २६ ॥ जो जारंजो युवा जं च जातं रजतमेव  
च ॥ जः प्राणुकोऽपि जलपाको जपनिष्ठो जयेन्द्रुकः ॥ २७ ॥

झद्याद्विझीञ्जुद्द्वेद्योद्योद्योद्यांजः ॥ ९ ॥

अथ शादेःशो दस्तो शकटो शब्दो शा योनिञ्चिः कला करीः  
शीः करी शुभृंगभृंश ध्रुवः संपोऽपरोरगो ॥ २८ ॥ शंश्वरमंदृहः  
सोमो रोमरामोऽथ शंश्वरः ॥ शोः कणां शोः स्मृतो नाको इं  
मेधुनमिति स्मृतम् ॥ २९ ॥ शः प्राणुकोऽपि शीमायं द्वंशात्ति  
च दुर्दिने ॥

**जजाजिजीञ्जूञ्जूञ्जोञ्जोञ्जः ॥ १० ॥**

अथ भादेः भस्तु नासिकया भापी वह्निरूपो भयानकः ॥ ३० ॥  
स्वरभेदकरोगश्च भा जरा राशिरेव च ॥ निः समादृज्ञानवृद्धोऽ  
ग्निर्भीः पासंडी सुराप्रियः ॥ ३१ ॥ भुः सुनेत्रो भूः सुवासा भेः कातः  
स्वरसन्निभः ॥ भेः कृष्णा भोः पलाशः स्याज्जोगाः पासंडवारु करी  
॥ ३२ ॥ पूर्वो ध्रुवा च अं सर्पिः परं व्रत्तं निगद्यते । नः प्राणुकोऽपि  
सुभगो वालको मृदुभापकः ॥ ३३ ॥

**टटाटिटीदुदूटेटोटोटिटः ॥ ११ ॥**

अथ टकारपंक्तेः । टष्टंकष्टंकणं पूर्वी हा मूत्रकृच्छ्रोऽथ पिष्ठलः ।  
टा शूर्पाएः करेणुर्भूः सरमा टीर्धराधरः ॥ ३४ ॥ दुः कंकणोऽपि  
चूडः स्याद्वर्ननांदा स्वसा च भीः ॥ टेः काणऐर्द्धिङ्गन्यः स्याद्द्वे  
प्रेतो नभसी हयः ॥ ३५ ॥ टोः परेतो गुरुः शिष्यष्टोर्विनीतो द्वौ  
वृपः ॥ टं नेत्रं श्रवणं पात्रं श्रमणं मरणं तथा ॥ ३६ ॥ टः प्राणुको  
पि दुःशब्दो वंटाशब्दश्च ध्वन्यते ॥

**ठठाठिठीदुदूठैठोठौठः ॥ १२ ॥**

अथ ठादेः । ठो ध्वंसो नंदनश्चैव ज्ञानी मध्वरिरेवेच ॥ ३७ ॥  
वाचालः शून्य आसारष्टा शून्या मासिकेत्यपि ॥ ठिः कुमारो  
कुदुंब्यथ पुत्रवान् ॥ ३८ ॥ दुःकदंबो यमस्त्वष्टा दुः  
रेव च ॥ ठेः समासोऽपि ठैर्व्यासष्टोः समष्टौश्च गौतमः ॥ ३९ ॥



थथाथिथीयुथूथैथोथीथंथः ॥ १७ ॥

अथ यादेः । यःस्थायी ठकुरः सूर्यो गणेशो विनतासुतः ॥  
था धरित्री प्रभा गंगा यिर्गोदा यमुना तथा ॥ ६२ ॥ यीः समुद्रे  
ब्रणोरेवा युःसाक्षी थूः पराज्ञरः ॥ येव्यासस्येः शुकः प्रोक्तस्योर्धमै  
गाधिपुत्रकः ॥ ६३ ॥ यौः शंखस्थं विपं कर्म वहुलं सूक्ष्ममेवच ॥ यः  
प्रागुक्तोऽपि स्तंभः स्यात्स्थाणुदेवस्तदाश्रयः ॥ ६४ ॥

ददादिर्दुदूदैदोदौदंदः ॥ १८ ॥

अथ दादेः । दः पाता खंडिता दाता दा दात्री धीरणी  
शुभा ॥ दिर्दीनो दीः सुधानाथो दुर्दरिद्री करो वरः ॥ ६५ ॥ दूर्दुःसी  
दैः स्मृता जाया दैर्मत्स्यो वामनर्पभः ॥ दोर्हस्तश्चरणः शिश्रो  
दीः स्वर्गः प्राणआत्मजः ॥ ६६ ॥ दं दानं शरणं कर्म भव्यं न्यून  
मकिल्विपम् ॥ दः प्रागुक्तोऽपि दध्याब्यो दमी दानी दयापरः ॥ ६७ ॥

धधाधिधीयुधूधैधोधौधंधः ॥ १९ ॥

अथ धादेः । धो धर्मी धनवान्धन्यो धाता विष्णुर्विनायकः ॥  
धा धरित्री रमा गौरी धिर्धर्मी धीर्वृकोऽसुरः ॥ ६८ ॥ धुः  
सूनुधूः करो भारो धेर्वृक्षो धैश्च रावणः ॥ धोः पापी वृपणः पूषा  
धौर्धर्मः पृथिवी गिरा ॥ ६९ ॥ धं धनं धूननं दानं धारणं  
करणं सुखम् ॥ धः प्रागुक्तोऽथ धम्मिष्टे वंधो धन्वंतरिस्तुगः ॥ ६० ॥

ननानिनीनुनूनैनोनौननः ॥ २० ॥

अथ नादेः । नो नात्यज्ञो नलो नम्रो भावो नस्यो नरांतकः ॥  
रीसमूहेऽपि ना पुमान् गरिमा तथा ॥ ६१ ॥ निर्दु-  
श नी रागो तुर्हस्तो नूः कलव्रवान् ॥ नेः समो नैः कुरंगो  
प्रतिमांताथ शोभनः ॥ ६२ ॥ नोर्निषेधः खलो भूमिनैस्तरिः







मातृकाविलासः । [ दादराक्षर्यथा: ]

ससासिसीसुसूसेसैसोसौसंसः ॥ ३२ ॥

अथ सादे: । सस्सर्वजनपाता च सर्वज्ञः सुलभो रविः ॥  
 ॥ ९६ ॥ सा साक्षिणी च साटी च सा सीता सिस्तत्त्वामरः ॥  
 सी: सुखी सुः कुठारोऽर्कः सूर्धरा गर्भिणी तरी ॥ ९७ ॥ से: कर  
 से: शुकः थादः सोः सोमः सौः सहोदरः ॥ सं सुखं चरणोपांतं  
 मुख्यं श्रेष्ठं समेतरम् ॥ ९८ ॥ सः प्राणुकोऽपि संतानी सर्वमन्यः  
 सहोदरः ॥

हहाहिहीहुहूहैहोहौहंहः ॥ ३३ ॥

अथ हादे: । हो हरिहरिणो हर्षो हिरण्याक्षोऽथ तस्करः ॥ ९९ ॥  
 हा गंधर्वश्च हि: सपो हीनरो हर्षवान्मृगः ॥ हुः स्मृतो नहुपो राजा  
 हृषीप्रो हे: प्रसादकृत् ॥ २ ॥ हैर्हासो होश्च संबुद्धौ हौ  
 च्छिः पडाननः ॥ हं चौर्यं हरणं पूर्णं भासुरं भरणं भरम् ॥ ३ ॥  
 प्राणुकोऽथ पञ्चास्यो हनुमानंगदस्तथा ॥ लं हु ज्ञेयं परं व्रतं वाः  
 नोगोचरं सुखम् ॥ २ ॥

क्षक्षाक्षिक्षीक्षुक्षक्षेक्षक्षोक्षक्षंक्षः ॥ ३४ ॥

अथ क्षादे: । क्षःक्षांतः क्षा मही सीता क्षिज्योतिः क्षर्हुता-  
 शनः ॥ क्षुः क्षुद्रो वासवो वार्कः क्षुः पापिष्टः प्रणाशनः ॥ ३ ॥ क्षेः क्षुः-  
 कोय क्षेम्यत्वो जारः क्षोः क्षुरको ब्रणः ॥ क्षोः संजो धरणीपता-  
 क्षं क्षेत्रं क्षं पयो मधु ॥ ४ ॥ क्षः प्राणुकोऽपि क्षत्रेशः क्षमी क्षयहपे  
 हरीः ॥ ५ ॥

माटेयं मातृकावर्णः कृता सोभरिणा पुरा ॥ विस्तृतांगिरला  
 निद्वज्ञेतः प्रसादनी ॥ अनेकार्थप्रदा पुंसां काव्योत्साहवतां  
 सदा ॥ ८ ॥



कवो वा कवं कवो कवो वा त्यजाकवा कोभ्यां कोभिर्वा न किञ्चित्साहाय्यं कर्तुं शक्यते विनांगकाइर्यम् । कवे कोभ्यो वा स्वत्वां मादेहि। कवो धैर्यं मात्यजाकवः कवोः कवां वा स्वभाव एव र्थामृषी करणम् । कवि कोषु वा विवेकी न तिष्ठति । कौ वृप आयाति वा वौ कावो वा कावं पश्य कावा कोभ्यां कोभिर्वा मही धाय्यते। कावि कौषु नाराहेण कार्यम् । एवं कंजलं पिवति कमी कमि वा द्वितीयायां पश्यतीति योज्यम् । कमा कंभ्यां कंभिरूपा द्वियते। कमे पुष्पं देहि गच्छ । कमः कमोः कर्मा वोप्णतापाकरणम् स्वभावः । कमि कंसु वा निजांगमलंमाक्षिप । अकारांतत्वपतः स्तु कुलशब्दवन्नेयः। एवं का हिंसकः कंसः भागिनेयान्मारुपां कसौ कसो वा । द्वित्वहुत्वप्रयोगः कल्पांतरीयतदभिप्रायको वंध्यः । कसं कृष्णो जवान कसौ कसो वेति पूर्ववज्ज्ञेयम् । कोभ्यां कोभिर्वा कारायां देवकी नीयते । कसे कोभ्यो वा नार वोधितवान् । कसो मा विभीहि मातरिति जन्मकालीनश्रीकृष्णं क्लिदेवकीं प्रति । कसः कसोः कर्सा वा केशान्कृष्ण आदत्त । का करसु धर्मो नास्तीति रीतिःखादिक्षान्तेषु वर्णेषु वोध्यते । अथ दक्षरादिसंयोगवत्तामप्येषां सौभर्युक्तिमनुलक्षीकृत्यैव व्याख्यानं कुस्त्रिमादौ पुंस्त्वादिचिह्निताँल्लकाराद्याद्व्यवर्णान्ककारादीन्द्रादशक विनिर्मुक्तानाह । कुः कणः क्षु धरा क्षिर्धीः कुः पुत्रः क्लूर्हुताशनः क्षौः कलापी स्मृतः कुं तु वृत्तं साधुसमीरितम् ॥ १ ॥ कुः सिं वरुणोपि कुः क्षु दुर्गा मातृका गिरा ॥ क्षिः सूर्यः क्षीः स्मृतो वा कुः सूलुः सोम एव च ॥ २ ॥ क्लौलेष्मीः कुं वरं ज्योतिः सिंहो हरिणो गजः ॥ क्षौः सखी सरमा दुर्गा क्षिः कृष्णो वर वरः ॥ ३ ॥ क्षीः शिवः कुः सुतः स्नातः कुः शंखो गरुडो नरः कुः सुतो वरुणस्तारो वरः क्षौः सरमासुतः ॥ ४ ॥ कुं रिक्यं का



याज्यं स्मृतं इयं ज्ञपनाशनम् ॥ व्यं स्फीतं व्यं स्मृतं शाक्वं व्यं  
 जाडचं व्यं धनं वनम् ॥ २० ॥ एवं नाय्यं त्यं स्मृतं नित्यं थ्यं तथ  
 व्यं सुखं चिरम् ॥ नियं ध्यं त्वांध्यमित्युक्तं न्यं मान्यं नयनं वा  
 ॥ २१ ॥ प्यं कुप्यं पात्रमित्युक्तं प्यं पयो मरणं रजः ॥ व्यं सु  
 भ्यं भयं रुद्रं म्यं नाम्यं याम्यरम्यकम् ॥ २२ ॥ य्यं कृतं न्यायम्  
 धारं ल्यं प्रोक्तं निलयं बुधैः ॥ व्यं वियद्वनवस्त्रं स्याच्छ्यं त्वा  
 वश्य इत्यपि ॥ २३ ॥ प्यं सुप्यं शिष्यमित्याहुः प्यं वृष्ट्यमृप्यि  
 त्यपि ॥ स्यं सस्यं कास्यमित्याहुहीं हस्तिवदनं गृहम् ॥ २४ ॥  
 क्ष्यं स्मरं क्षेत्रमुत्कारं क्षया पृथ्वी जगदीश्वरी ॥ कः कविः का  
 व्यतातः स्यात्का भूरिति निगद्यते ॥ २५ ॥ कं काव्यं कमलं  
 कं स्याद् ग्वो गौर्गरुद उच्यते ॥ ग्वा धेनुर्ग्वं स्मृतं गुह्यं घो घो  
 घ्वा उरणिः स्मृता ॥ २६ ॥ ध्वं धुपं धर्पणं धासं लुभ्यागद्व्या छ  
 विः स्मृता ॥ लुं स्वच्छुपुच्छं गोमूत्रं ज्वो यवो ज्वा च चंचला  
 ॥ २७ ॥ ज्वं जुप्तं इवः समुद्रः स्याज्ज्वा वसिष्ठवधूः स्मृता ॥ इं  
 दुर्गं दधि च प्रोक्तं द्वोऽवी रामपिता मनुः ॥ २८ ॥ द्वाख्वा द्वृस्तं  
 तं पुष्टं द्वो वसिष्ठो य विह्वलः ॥ द्वा चित्रामधुरा द्वं तु पुष्टं  
 चाक्षमुच्यते ॥ २९ ॥ द्वोभरद्वाजपुष्पः स्याद् द्वाधेटाङ्गं महोददरम  
 द्वो ढंडोऽद्वा मनःक्षेभ्या द्वं पयो दधि चौदनम् ॥ ३० ॥ नाथो  
 जमदग्निः स्यान्प्वा वाप्युज्जयिनी प्रभा ॥ एवं रूपम् द्वु  
 प्रोक्तं त्वस्तुरंगो महेश्वरः ॥ ३१ ॥ त्वा स्वपत्नी च गौरी च  
 तुल्यं मरणं तथा ॥ थोऽद्वैऽक्षरोऽरुणस्थवा स्त्री थ्वं तु मैथुन  
 च्यते ॥ ३२ ॥ द्वो दावो द्वा पुरी गंगा द्वं दूरं च दर्शनं यत् ॥  
 धवोऽग्निर्विधो ध्वाऽध्वा धरा धारा वधूत्तमा ॥ ३३ ॥ ध्वं धन्यं  
 न ध्वस्तं ज्ञोऽहिर्द्वंगो धनी स्मृतः ॥ धा धन्या मातुली सा



छुं लक्ष्मि ला स्मृता गौरी छो लोकस्तर्कं इत्यपि ॥ खलः खलः  
 खला सरा क्षुद्रा योपित्कमललोचना ॥ ६० ॥ गलः शनीन्दुगुडा  
 गला वा गलं गलनं सरित् ॥ घ्लोऽश्वो घ्ला जघनं घ्लं तु वृक्षं  
 सारथिपातनम् ॥ ६१ ॥ झुश्चलः शलकूच्छ्लोद्भां पुरी छ्ना तु शिं  
 वालयम् ॥ पुः पुवंगः पुवः शूरः पूरा पाटी परमेश्वरी ॥ ६२ ॥  
 प्लं मांसं प्लवनं मध्ये पूरणं धरणीतलम् ॥ फलः फणीशः स्म  
 फला च फलिनी फलधारिणी ॥ ६३ ॥ फलं फलं वाण  
 च वदनं सकलं वपुः ॥ व्लं वलं व्ला स्मृता रक्ता वरटी कं  
 रित्यपि ॥ ६४ ॥ व्लो वालोऽवामुरः कंसो ज्ञोऽव्वा मारो  
 लो यमः ॥ व्लं माल्यं मधुरं व्ला क्षमा ही देवेशोऽमरावती ॥ ६५  
 ढः कल्पः कमलानाथो गहडो हंससारथिः ॥ कः व  
 शरभो व्याघ्रो नाथः का सुरभिर्मही ॥ ६६ ॥ कं खर्मिद्रियमिति  
 कं श्रो खो रासभे खले ॥ श्रा पूतना शूर्पणखा ताडका कैक  
 क्षितिः ॥ ६७ ॥ ग्रं सङ्गं दुष्टहृदयं मेयुनं मरणं तथा ॥ ग्रोः  
 गुद आसारो ग्रा राक्षी व्रभयोपितोः ॥ ६८ ॥ ग्रं गृहं ग्रहं  
 रामायारः शुक्रमेव च ॥ ग्रो योपो मदनशूतो भगो ज्ञो यामि  
 पतिः ॥ ६९ ॥ ग्रा धृणा सरमापुत्री ग्रं गृहं वदनं निजम् ॥  
 नरोऽशरणः अरो द्वा मारणमिति स्मृतम् ॥ ६० ॥ ग्रं गृहं रो  
 नासा मता हानिश्च कथ्यते ॥ व्रश्रमशः स्मरः शोकशृतशा  
 इन्यपि ॥ ६१ ॥ ग्रा चंगुश्च चमृश्चाहृ ग्रं मेयुनकमप्रजम् ॥  
 द्वेर्पा शुक्रिया रहज्ञस्तस्तरंगमागंणः ॥ ६२ ॥ द्वा विद्या शुन  
 वेद्या ग्रं ननं गमनं गृहम् ॥ ग्रो वृद्धो गमनेच्छोऽग्निवेशोमि  
 रमात्मिः ॥ ६३ ॥ जटायुश्च जगायुश्च जमदग्निर्नीपतिः  
 ग्रा च जग जंगा जागन्मन्दी पद्मपदी वृणी ॥ ६४ ॥ ग्रं यद्वा



दाक्षदः ॥ त्रं गृहं नारकं गारं गरुडांगं गरोद्भवम् ॥ ८२ ॥ प्रा प्रकृष्टम्  
 हादेवी महालक्ष्मी रजोद्भवा ॥ मधुरा मर्मसारो वा क्षमा क्षमाक्षमा  
 नासिका ॥ ८३ ॥ प्रः प्रकृष्टोऽधकारातिर्मुरारातिः कजोद्रवः ॥ ८४ ॥ प्रं ब्रह्मगमने भू  
 अमरांगं धरातलम् ॥ गंगातीरं पयःपेयं पाथः परसरं सरः ॥ ८५ ॥  
 फृत्कारः स्वनः फेनः स्फुरन्स्प्रपांवरेचरः ॥ फू वीरपती कम  
 सरी कारनदी सुरा ॥ ८६ ॥ फ्रं स्फुरद्वसनं जुष्टं पलं स्फुटनमु  
 तम् ॥ प्राकृतं गमनं ध्वस्तं धृतं धरणमुच्यते ॥ ८७ ॥ ओ वृहू  
 तिराचार्यो वदुर्वृद्धो वरावृतः ॥ वाष्पकलो वहुदो वाजी वहुवीहि  
 वुहुदः ॥ ८८ ॥ वालो वाणोऽवलो वद्वोऽवष्टोऽवदो वधिरः स्मृतः ॥  
 वाला वधिरांजवष्टा वद्वीवद्वांजवरेश्वरी ॥ ८९ ॥ त्रं ब्रह्मवलमुच्चे  
 वधिरांगं तथा वरम् ॥ वहुलं वहुसारं च वधिरास्यं वटोर्मुखम् ॥ ९० ॥  
 ओ व्रह्मा प्रकटो भारो अमरो धूसरो धरः ॥ भ्रामको भासुरो भ्र  
 भीमसेनोऽभयः स्मृतः ॥ ९१ ॥ भ्रं भासुरं तथाऽभ्रं तु भ्रामवे  
 भरणं भयम् ॥ भ्रा भ्रष्टा व्राह्मणी भावा हिडंवा धरिणी तथा ॥ ९२ ॥  
 ओ मरो मृत्युकृन्मत्यो मेधुनी माधवी वलः ॥ भ्रमरी भानवी मार  
 मानेनी यामेनी शुनी ॥ ९३ ॥ भ्रं मेधुनं सृतांगं च मरणं मस्तकं  
 मधु ॥ श्रो यादवोऽरुणो जारो या जराज्वरवाज्जरा ॥ ९४ ॥ यं उं  
 भोजनभ्राजं जायमानं नरोद्भवम् ॥ ग्रिः कामिनी प्रिया तुष्टा पल  
 पारगांवुषेः ॥ ९५ ॥ रकारद्ययोगभावः शास्त्राद्वैः ॥ ल्लो टां  
 टाटितोऽल्पांगो ल्ला साज्ञा ल्लाटितांतुजा ॥ ९६ ॥ ल्लालितं इ  
 वितं लं सं ल्लाटितं लटनासुखम् ॥ ओ वाराहो वरो वाम्बा वाङ्म  
 वासरोऽवृथिः ॥ ९७ ॥ ओ अंष्टा गिरिजा लक्ष्मी रत्नाकरणता तद्  
 वं तुलायोमुखं भीमं भासुरं श्रेष्ठमुच्यते ॥ ९८ ॥ अः शरश्चाग  
 सारः शरण्यः सारथिः तिक्षः ॥ था गौरी सरमा रामा रत्नाकरण



तन्नाम विज्ञेयमित्येतत्सोभेर्मतम् ॥ १६ ॥ यथा प्रशस्तमिति  
नामानि व्रयः प्रादयो वर्णाः संति तैर्नामकल्पना च ॥ प्रं प्रशस्तं शं  
प्रशस्तं स्तं प्रशस्तमितीरितम् ॥ एवं सर्वत्र वोद्धव्यमिति सौभार-  
णोदितम् ॥ १७ ॥ इत्येवं ग्रथिता मालाक्षरी सौभारणा पुरा ॥ यः  
पठेच्छृणुयाच्चेमां स शब्दार्थवपारगः ॥ ११८ ॥ यां चकार मह-  
पीशः सौभारहीनतोयाधिः ॥ अंगिरास्तत आश्रुत्य तां चकार वि-  
लोकगाम् ॥ १९ ॥ वंशीधरो गुरुणां च सौभर्यगिरसोस्तथा ॥  
मोदाय विदुपां राधाकृपणानुग्रहतोलिखत् ॥ १२० ॥ अस्य पाठ-  
च्छुतेश्वाथ सर्वशास्त्रश्रुतेः फलम् । एतन्मयं यतः सर्वं प्राप्नुयान्नाम  
संशयः ॥ २१ ॥ यो नित्यं मातृकामालां कंठस्थां कुरुते द्विजः ॥  
तस्य कंठगता देवी सरस्वती वसत्सदा ॥ १२२ ॥ अथ चैतस्मा-  
द्यथा श्रीभगवतो वर्णसमानायाद्वेदाविर्भावो ब्रह्मादिद्वाराऽभृतं व-  
र्णयामः । वेदाविर्भावस्तु पूर्वं श्रीमद्भागवतीयतृतीयेकादशद्वादश-  
स्कंधोक्तरीत्या वर्णितोऽपि पुनरपि तं स्वरूपलक्षणतः स्मारयामः ॥  
तथाहि । ‘यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्राहिणोति त-  
स्मै’ इत्यादिश्रुतेनित्यासिद्धानेव वेदांस्तस्मै प्राहिणोत्प्रेपयामा-  
स स्वांतःस्थितान्वेदान्परमात्मा निजाचिन्त्यशक्तया ब्रह्मनसि  
प्रणवमातृकारूपेण सूक्ष्मानपि तन्मुखेभ्य ऋगादिस्थूलरूपेणैवोचा-  
रयामासेति । अतएवोक्तम् ‘अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टि  
स्वयंभुवा । आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः’ इति स्मृतेः  
‘वाचा विरूपनित्यया’ इति श्रुतेश्च वेदस्य नित्यत्वम् । यद्वोक्तम्  
‘ऋचः सामानि जज्ञिरे’ इति। तत्राप्याविर्भाव एव वोध्यो जनेः प्रा-  
र्वार्थकत्वात् । ननु ‘शास्त्रयोनित्यात्’ इति सूत्रस्य कागतीर-  
चेत्तत्र योनिशब्दः प्रमाणार्थक एव ‘तं त्वौपनिषदं पृच्छामि’  
इत्युपनिषदेवत्वमेव तदर्थं इति । किञ्च ‘ तस्यैतस्य महतो भू-



धनुर्वेदो गांधर्ववेदोर्थशास्त्रं च सर्वेषामास्तिकानामेतावन्ति हि  
धर्मप्रस्थानानि अन्येषामप्येकदेशिनामेष्वेवांतर्भावात् । ननु ना-  
स्तिकानामपि प्रस्थानानि संति तान्येष्वनंतर्भावात्पृथगणये-  
तु मुचितानि । तथाहि शून्यवादेनैकं प्रस्थानं माध्यमिकानां क्षणि-  
कविज्ञानवादेनापरं योगाचाराणां ज्ञानाकारानुमेयक्षणिकवाह्यार्थ-  
वादेनापरं सौत्रांतिकानां प्रत्यक्षणिकवाह्यार्थवादेनापरं वैभाषि-  
काणामिति सौगतानां प्रस्थानचतुष्टयम् । तथा देहात्मवादेनैकं  
प्रस्थानं चार्वाकाणामेवं देहातिरिक्तदेहप्रमाणात्मवादेन द्वितीयं  
प्रस्थानं दिगंबराणामेवं मिलित्वा पट् प्रस्थानानि कस्मात्मोच्यते ।  
सत्यंवेदवाह्यत्वात्तेषां म्लेच्छादिप्रस्थानवत्परं परयापि पुरुषार्थानुप  
योगादुपेक्षणीयत्वमेव । इह च साक्षात्परं परया वा । परमार्थोपयोगिनां  
वेदोपकरणानामेव प्रस्थानानां भेदो दर्शितः । अथ संक्षेपेणैषां  
प्रस्थानानां स्वरूपभेदहेतुः प्रयोजनभेद उच्यते वालानं  
व्युत्पत्तये । तत्र धर्मप्रतिपादकमपौरुषेयं वाक्यं वेदः सच मंत्रात्म-  
णात्मकः । मंत्रात्मण्योर्वेदं नामधेयम् । इति तत्स्वरूपस्यान्यवेक्षणे ।  
तत्र मंत्रा अनुष्टानकारकभूतद्रव्यदेवताप्रकाशकास्तेषि विधि-  
धा ऋग्यजुःसामभेदेन । तत्र पादवद्धगायत्र्यादिच्छंदोविशिष्टा  
ऋचः ‘अग्निमीळे पुरोहितम्’ इत्यादिकास्ता एव गीतिवि-  
शिष्टाः सामानि । तदुभयविलक्षणानि यजूंपि अग्निदात्री-  
न्विहरंतित्यादिसंबोधनरूपाणि । निगदमंत्रा अपि यजुं रंतर्गता एव  
तदेवं निरूपिता मंत्राः । मंत्रव्याख्यानरूपं व्राह्मणम् । व्राह्मणमपि  
विधिरूपमर्थवादरूपं तदुभयविलक्षणं चातत्र शब्दी भावना  
तिभावः । नियोगो विधिरिति प्राभाकरः । इष्टसाधनता विधि-  
रिति तार्किकाः । विधिरपि चतुर्विध उत्पत्त्यधिकारावेनियोगप्रयोगभे-  
न कर्मस्वरूपमात्रप्रतिपादको विधिरूपत्तिविधिः ‘आग्नेयोऽ-



भूतार्थवादः 'इंद्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छत्' इत्यादिः । तदुक्तं 'निरो  
 गुणवादः स्यादनुवादोऽवधारिते । भूतार्थवादस्तद्बानादर्थवादर्थि  
 धा मतः' इति । तत्र विविधानामर्थवादानां विधिस्तुतिपरत्वे सम  
 नेऽपि भूतार्थवादानां स्वार्थेऽपि प्रमाण्यम् देवताधिकरणन्य  
 यात् अवाधिताज्ञातज्ञापकत्वं हि प्रामाण्यम् । तत्र वाधितविषयत्वा  
 च ज्ञातज्ञापकत्वाच नगुणवादानुवादयोः । भूतार्थवादस्य ( १ )  
 स्वार्थतात्पर्यरहितस्याप्यौत्सर्गिकं प्रामाण्यं न विहन्यते । तदेव  
 निरूपितोऽर्थवादभागः । विध्यर्थवादोभयविलक्षणं तु वेदांतवा  
 क्यम् । तज्ञातज्ञापकत्वेऽप्यनुष्टुपानाप्रतिपादकत्वात्र विधिः स्व  
 तः पुरुषार्थपरमानंदज्ञानात्मके व्रहणि स्वार्थे चोपकमोपसंहारा  
 दिपद्विधतात्पर्यलिंगवत्तया स्वतःप्रमाणभूतं सर्वानपि विधीनंतः  
 करणजुटिद्वारा स्वशेषतामापादयन्परशेषपत्वाभावाच नार्थवाद-  
 स्तस्मादुभयविलक्षणमेव वेदांतवाक्यम् । तत्र कविदज्ञातज्ञाप-  
 कत्वेन विधिरिति व्यपदिश्यते । विधिपदरहितप्रमाणवाक्यते  
 कविज्ञूतार्थवाद इति व्यवह्रियते इति न दोषः । पाद्विधलिंगानि  
 च 'उपकमोपसंहारवभ्यासोऽ पूर्वताफलम् । अर्थवादोपपत्ती च  
 लिंगं तात्पर्यनिर्णये' इति उपकमोपसंहारवेकलिंगम् । अद्वितीया  
 त्मप्रतिपादकत्वात् । सुष्टुः पूर्वं नामरूपरहितं सत्तामात्रमिदं  
 जगदिति छांदोग्ये पष्टे प्रपाठके 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' इति  
 श्रुत्या प्रतिपादनमुपकमः । प्रतीयमानं सर्वं जगदिदं पूर्वोक्तसत्त्व-  
 रूपमेव नान्यदिति । 'ऐतदात्मामिदं सर्वम्' इति श्रुत्यांते प्रतिपादन-  
 मुपसंहारः ॥ ३ ॥ प्रकरणप्रतिपाद्यस्य उनःपुनः प्रतिपादनमभ्या-  
 सः । यथा तत्र तत्त्वमसीति नवकृत्वोऽभ्यासः । प्रकरणप्रतिपाद्यस्य  
 तन्मध्ये तत्त्वमसीति नवसंख्याकोपदेशेन प्रतिपादनमभ्यासः ॥२॥  
 प्रमाणानां मध्ये लक्षण्या 'तं त्वोपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' इत्यु-



प्रयोग ऋग्वेदेनाध्वर्यवप्रयोगो यजुर्वेदेनोद्ग्रावप्रयोगः सामवेदेन  
 ब्रह्मयजमानप्रयोगौ तत्रांतर्भूतौ । अर्थवेदस्तु यज्ञानुपयुक्तर  
 न्तिकपौष्टिकाभिचारिकादिकर्मप्रतिपादकत्वेनात्यंतविलक्षणएः  
 प्रवचनभेदात्प्रतिवेदं भिन्ना भूयस्यः शास्त्राः संति । तज्ज्ञानं चरण  
 व्यूहवैदिकव्याख्यान्वयात् । एवं च कर्मकांडे व्यापारभेदे ऽपि सर्वासां  
 वेदशास्त्रानामेकरूपत्वमेव ब्रह्मकांडं इत्यादिव्यतुर्णा वेदानां प्रयो-  
 गभेदेन प्रयोजनभेद उक्तः ॥ अथांगनामुच्यते । तत्र शिक्षाया-  
 उदात्तानुदात्तस्वरितहस्तवदीर्घसुतादिविशिष्टस्वरव्यञ्जनात्मकवर्णो-  
 चारणविशेषज्ञानं प्रयोजनं तदभावे मंत्राणामनर्थफलत्वात् । तद-  
 चोक्तं' मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ॥  
 वाग्वत्रो यजमानं हिनस्ति यथेऽद्विशुस्त्वरतोऽ पराधात् ॥  
 इति । तत्र सर्ववेदसाधारणो शिक्षा । 'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि' इति पं-  
 दं अन्ये रेव मुनिभिः प्रदर्शिता । प्रतिवेदशास्त्रं भिन्नाः प्रातिशास्त्र्यसंज्ञिः  
 संदात्मिका प्रकाशिता । प्रतिवेदसाधारणो शिक्षा । 'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि'  
 व्याकरणप्रयोजनं । तत्र 'वृद्धिरादेच' इत्याद्यष्टाध्याय्यात्मकं महेश्वर-  
 प्रसादेन पाणिनिन्देव प्रकाशितम् । तत्र कात्यायनेन मुनिना पाणि-  
 नीयमूलेषु वार्तिकं विरचितम् । तद्वार्तिकोपारं च भगवता पतंजलिन  
 महाभाष्यमारचितम् । तदेतत्त्विमुनिव्याकरणं वेदांगं महेश्वरमित्या-  
 ख्यायते । कोमारादिव्याकरणानि तु न वेदांगानि । किन्तु लौकिक-  
 प्रयोगमात्राधर्मनीत्यवगंतव्यम् । एवं शिक्षाव्याकरणाभ्यां वर्णांशा-  
 यान्केन 'समाप्तायः समाप्तातो व्याख्यातव्य' इत्यादिव्योद्दशा-  
 ध्यायात्मकं निरुक्तमारचितम् । तत्र च नामाख्यातनिपातोपहरणं  
 भेदेन चतुर्दिंधं पद्मानां निरूप्य वेदिकपदानामर्थः प्रदर्शितः । म- ।  
 । नां चारुष्टेयाधर्मप्रकाशनद्वारेण्व करणत्वात्पदाधर्मज्ञानाधीनतात्



हरेणवैदिकानुष्ठानकमविशेषविज्ञापनाय कल्पसूत्रार्थं  
 गवयभेदात्रिविधानि । तत्र होत्रप्रयोगप्रतिपादकान्याथ  
 यनादिप्रणातानि । आध्यर्यवप्रयोगप्रतिपादकानि वौध  
 कात्यायनादिप्रणीतानि । ओद्भावप्रयोगप्रतिपादकानि इति  
 यारुण्यादिप्रणीतानि । एवं निष्ठुपितःपणामंगानां प्रव  
 चतुर्णामुपांगानामधुनोच्यते । तत्र सर्गप्रतिसर्गमन्वंतर  
 रितप्रतिपादकानि भगवता वादरायणेन निष्ठुपितानि ।  
 निच त्राह्मं पाञ्चवैष्णवं शैवं भागवतं नारदीयं मार्कण्डेय  
 पथं ब्रह्मवैवर्त्तं लोगं वाराहं स्कांदं वामनं कौर्मी मात्स्यं ग  
 चेत्यपादश । एवमुपपुराणान्यपि गणेशकालिकासांवप  
 नेकानि द्रष्टव्यानि । न्याय आन्वीक्षिकी पञ्चाध्यायी गौतं  
 प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टांतसिद्धांतावयवतर्कविपक्ष  
 वितण्डहेत्वाभासच्छलजातिनिश्रहस्थानानांपोडशपद  
 शलक्षणपरीक्षाभिस्तत्त्वज्ञानं तस्याः प्रयोजनमेवं दशाध्य  
 कं शास्त्रं कणादेन प्रणीतम् । द्रव्यगुणकर्मसामान्यसमवा  
 भावपदार्थानामभावसप्तमानां साधर्म्यवैधर्म्यभ्यां व्युत  
 प्रयोजनं तदपि न्यायपदेनोक्तम् । एवं मीमांसाऽपि द्विविध  
 सा शारीरिकमीमांसा च । तत्र द्वादशाध्यायी धर्ममीमां  
 धर्मजिज्ञासा' इत्यारभ्य 'अन्वाहार्य्यं च दर्शनात्' इत्यं  
 जैमिनिना प्रणीता । तत्र धर्मप्रमाणं धर्मभेदः शेषोपायभाव  
 पुरुषार्थभेदेन प्रयुक्तविशेषः श्रुत्यर्थपठनादिभेदः क्रम  
 विशेषः सामान्यातिदेशो विशेषातिदेश ऊहो वाधस्तं  
 क्षेत्रा हात्याकारात्मकार्यां । एवं इति ।



मातृकाविलासः । [वियाविर्मांवः]

पि यत्र नगरे प्रसिद्धः स्याद्बुद्धरः ॥ ततो यन्त्यरयो द्वरान्  
 सिंहगृहादिव ॥ १ ॥ अथ धनुर्दानविधिः । आचार्येण धनुं  
 त्राह्मणे सुपरीक्षिते ॥ लुब्धे धूर्ते कृतमे च मंडुष्टौ न दापये  
 ॥ २ ॥ त्राह्मणाय धनुर्देयं सङ्गं वै क्षवियाय च ॥ वैश्याय दापये  
 त्कुन्तं गदां शूद्राय दापयेत् ॥ ३ ॥ धनुश्चकञ्च कुन्तञ्च सङ्गं च  
 अथाचार्यलक्षणम् । आचार्यः सतयुद्धः स्याच्चतुर्भिर्भार्गवः स्मृतः  
 द्वाभ्याच्चैव भवेयोध एकेन गणको भवेत् ॥ ५ ॥ हस्तः पुनर्वसु  
 पुष्यो रोहिणी चोत्तरात्रयम् ॥ अनुराधाविनी चैव रेवती दशम  
 तथा ॥ ६ ॥ जन्मस्थे च तृतीये च पष्टे वै सतमे तथा ॥ दशमैकादृ  
 शे चंद्रे सर्वकार्याणि कारयेत् ॥ ७ ॥ तृतीया पंचमी चैव सप्तमी  
 दशमी तथा ॥ त्रयोदशी द्वादशी च तिथयस्तु शुभा मताः ॥ ८ ॥  
 रविवारः शुक्रवारो गुरुवारस्तथैवत्त्र ॥ एतद्वात्रयं धन्यं ।  
 शस्त्रकर्मणाम् ॥ ९ ॥ एभीर्दिनैस्तु शिष्याय गुरुः शस्त्राणि दाप-  
 येत् ॥ संतर्प्य दानहोमाभ्यां सुरान्स्वाहाविधानतः ॥ १० ॥ त्राह्मण-  
 न्मोजयेत्तत्र कुमारीशाप्यनेकशः ॥ तापसानर्चयेद्दत्तया ये चान्ये  
 शिवयोगिनः ॥ ११ ॥ अन्नपानादिभिर्चैव वस्त्रालंकारभूपणैः ॥ ।  
 गंधमाल्यैर्विचित्रैश्च गुरुं तत्र प्रपूजयेत् ॥ १२ ॥ कृतोपवासः शिष्यस्तु  
 धृताजिनपरिग्रहः ॥ वद्धांजलिपुटस्तत्र याचयेद्गुरुतो धनुः ॥ १३ ॥  
 अंगन्यासं ततः कार्यं शिवोक्तं सिद्धिमिच्छता ॥ आचार्येण च  
 शिष्यस्य पापश्च विनाशनम् ॥ १४ ॥ शिखास्थानेन्यसेदीर्गं ।  
 वाहुयुग्मे च केशवम् ॥ त्रह्माणं नाभिमध्येतु जंवयोश्च गणाधि-  
 पम् ॥ १५ ॥ प्रतिमंत्रम् । ओँ ह्रौँ शिखास्थाने शंकराय  
 नमः । ओँ ह्रौँ वाहोः केशवाय नमः । ओँ ह्रौँ नाभिमध्ये व्रह्मण-  
 १६ः । ओँ ह्रौँ जंवयोर्गणपतये नमः ।



तम् ॥ ३२ ॥ अतिजीर्णमपकञ्च ज्ञातिघृण्टं तथैव च ॥ दग्धं छि  
न कर्तव्यं वाद्याभ्यन्तरहस्तकम् ॥ ३३ ॥ गुणहीनं गुणाकांतं कांडं  
पसमन्वितम् ॥ गलय्रंथिं न कर्तव्यं तलमध्ये तथैव च ॥ ३४  
अपकं भंगमायाति ज्ञातिजीर्णं तु कर्कशम् ॥ ज्ञातिघृण्टं तु सों  
गं कलहो वांधवैः सह ॥ ३५ ॥ दग्धेन दद्यते वेइम छिद्रं युद्धा  
नाशनम् ॥ वाद्ये लक्ष्यं न लभ्येत तथैवाभ्यन्तरेऽपि च ॥ ३६  
हीने तु संधिते वाणे संत्रामे भंगकारकम् ॥ आकांते तु पुनः कां  
लक्ष्यं न प्राप्यते वृढम् ॥ ३७ ॥ गलय्रंथि तलय्रंथि धनहीनव  
धनुः ॥ एभिदौपैर्विनिर्मुक्तं सर्वकार्यकरं स्मृतम् ॥ ३८ ॥ शा  
पुनर्धनुर्दिव्यं विष्णोः परममायुधम् ॥ वितस्तिसतमं मानं निर्मि  
विश्वकर्मणा ॥ ३९ ॥ न स्वर्गे न च पाताले न भूमौ कस्यचित्करे  
तद्वनुवेशमायाति मुक्तवैकं पुरुषोत्तमम् ॥ ४० ॥ पौरुषेयं  
यच्छाङ्गं बहुवत्सरशोभितम् ॥ वितस्तिभिः सार्द्धपङ्गिर्निर्मितं चार्थं  
धनम् ॥ ४१ ॥ प्रायो योज्यं धनुश्शाङ्गं गजारोहाश्वसादिनाम् ॥ रथि  
च पदातीनां वांशं चापं प्रकीर्तितम् ॥ ४२ ॥ अथ गुणलक्षणानि गुणा  
लक्षणं वक्ष्ये यादृशं कारयेद्गृणम् ॥ पट्टसूत्रो गुणः कार्यः का  
ष्टामानसंमितिः ॥ ४३ ॥ धनुः प्रमाणो निःसन्धिः शुद्धेन्द्रियगुण  
तुभिः ॥ वर्तितः स्याद्गृणः शुक्षणः सर्वकर्मसहो युधि ॥ ४४  
अभावे पट्टसूत्रस्य हरिणीस्त्रायुरिप्यते ॥ गुणार्थमपि च ग्राव  
स्यायवो महिषीभवाः ॥ ४५ ॥ तत्कालहतगोकर्णचर्मणा छागलेन  
निलोमतं तसूत्रेण कुर्याद्वा गुणमुक्तमम् ॥ ४६ ॥ पकवंशत्व  
कार्यो गुणस्तु स्थावरो वृढः ॥ पट्टसूत्रेण सव्वद्वः सर्वकर्मसहो यु  
॥ ४७ ॥ प्राते भाद्रपदे मासि त्वगकस्य प्रशस्यते ॥ तस्यात  
कार्यो नवित्रः स्थावरो वृढः ॥ ४८ ॥ वृत्ताकंसूत्रतंत्रे



द्यवर्माणि भेदयेत्तरुपर्णवत् ॥ ६५ ॥ पिप्पलसिंधवं कुरुंगोमूर्ते  
तु सुपेपयेत् । अनेन लेपयेच्छस्वं लितञ्चामौ प्रतापयेत् ॥ ६६ ॥  
शिखियीवानुवर्णाभं तसपीतं तथोपधम् ॥ ततस्तु विमलं तोयं  
पाययेच्छस्वमुत्तमम् ॥ ६७ ॥ अथ नाराचनालीको ॥ सर्वलोहास्तु ये  
वाणा नाराचास्ते प्रकीर्तिताः ॥ पञ्चभिः पृथुलैः पक्षेरुक्ताः सिथ्यन्ति  
कस्यचित् ॥ ६८ ॥ नालीका लघवो वाणा नलयेत्रेण नोदिताः ॥ अत्यु-  
च्छदूरपातेषु दुर्गयुद्धेषु ते मताः ॥ ६९ ॥ अथ स्थानमुष्ट्याक  
पैणलक्षणानि । स्थानान्यष्टौ विधेयानि योजने भिन्नकर्मणाम् ॥ ७० ॥ अग्रो  
पञ्च समाख्याता व्यायाः पञ्च प्रकीर्तिताः ॥ ७० ॥ अग्रो  
वामपादञ्च दक्षिणं चानुकुञ्चितम् ॥ आलीढं तु प्रकर्तव्यं हस्तदद्य-  
सविस्तरम् ॥ ७१ ॥ प्रत्यालीढे तु कर्तव्यं सव्यञ्चैवानुकुञ्चितम् ॥  
दक्षिणं तु पुरस्ताद्वा दूरपाते विशिष्यते ॥ ७२ ॥ पादौ सविस्तरी  
कायौ समौ हस्तप्रमाणतः ॥ विशाखस्थानकं ज्ञेयं कूटलक्ष्यस्य  
वेधने ॥ ७३ ॥ समपादे समौ पादौ निष्कर्म्मौ च सुसंगतौ ॥  
असमे च पुरो वामे हस्तमात्रे नन्तं वपुः ॥ ७४ ॥ आकुञ्चितोहूँ  
यत्र जानुभ्यां धरणीं गतौ ॥ दुरुक्रममित्याहुः स्थानकं दृढभेद-  
ने ॥ ७५ ॥ सव्यं जानुगतं भूमौ दक्षिणञ्च सकुञ्चितम् ॥ अग्रो  
यत्र दातव्यं तं विद्याद्वरुडकमम् ॥ ७६ ॥ पद्मासनं प्रसिद्धं तु  
ह्युपविश्य यथाकरमम् ॥ धन्विना तत्तु विज्ञेयं स्थानकं शुभलक्षणम्  
॥ ७७ ॥ इति स्थानानि ॥ अथ गुणमुष्ट्यः ॥ पताका वज्रमुष्ट्येत्र  
सिहकर्णस्तथैव च ॥ मत्सरी काकतुण्डी च योजनीया यथाकरमम्  
॥ ७८ ॥ दीर्घा तु तर्जनी यत्र ह्याधितांगुष्ठमूलकम् ॥ पताका सा  
च विज्ञेया नलिका दूरमोक्षणे ॥ ७९ ॥ तर्जनीमध्यमामध्यमंगुष्ठो  
ते यदि ॥ वज्रमुष्ट्यस्तु सा ज्ञेया स्थूले नाराचमोक्षणे ॥ ८० ॥  
उभयपैरं तु तर्जन्ययं सुसंस्थितम् ॥ सिहकर्णः स विजे-



करे ॥ विशाखेनासमेनैव रथी व्याये च कैश्के ॥ १८ ॥ उद्दीप  
 भास्करे लक्ष्यं पश्चिमायां निवेशयेत् ॥ अपराह्णे च कर्तव्यं लक्ष्यं  
 पूर्वदिगाथ्रितम् ॥ १९ ॥ उत्तरेण सदा कार्यमवश्यमवरोधिकम् ॥  
 संग्रामेण विना कार्यं न लक्ष्यं दक्षिणामुखम् ॥ २० ॥ पष्टिधन्वंतरे  
 लक्ष्यं ज्येष्ठं लक्ष्यं प्रकीर्तितम् ॥ चत्वारिंशन्मध्यमं च विश्वाविर्भाव  
 कनिष्ठकम् ॥ १ ॥ शशाणां कथितं ह्येतन्नाराचानामथोच्यते ॥ चत्वारि-  
 ंशच विश्वच पोडशैव भवेत्ततः ॥ २ ॥ चतुःशतैश्च कांडानां योहि  
 लक्ष्यं विसर्जयेत् ॥ सुर्योदये चास्तमने स ज्येष्ठो धन्विनां भवेत् ॥  
 ॥ ३ ॥ विश्वतैर्मध्यमश्चैव द्विशताभ्यां कनिष्ठकः ॥ लक्ष्यं च पुरु-  
 षोन्मानं कुर्याच्चंद्रकसंयुतम् ॥ ४ ॥ ऊर्ध्ववेधी भवेज्येष्ठो नाभि-  
 वेधी च मध्यमः ॥ पादवेधी तु लक्ष्यस्य स कनिष्ठो मतो बुधैः ॥ ५ ॥  
 अथानध्यायाः ॥ अष्टमी च ह्यमावास्या वर्जनीया चतुर्दशी ॥ पूर्ण-  
 मार्घदिनं यावत्त्रिपिछ्दं सर्वकर्मसु ॥ ६ ॥ अकाले गर्जिते देवे दुर्दिनं  
 चाथवा भवेत् ॥ पूर्वकांडहतं लक्ष्यमनध्यार्थं प्रचक्षते ॥ ७ ॥ अतु-  
 राधक्षमारभ्य पोडशक्षें दिवाकरः ॥ यावच्चरति तं कालमकालं हि  
 प्रचक्षते ॥ ८ ॥ यद्वा । अरुणोदयवेलायां वारिदो यदि गर्जति ॥  
 तदिने स्यादनध्यायस्तमकालं प्रचक्षते ॥ ९ ॥ श्रमं च कुर्वते  
 स्त्र॒घ भुजंगो दृश्यते यदि ॥ अथवा भज्यते चापं यदैव श्रमक-  
 मणि ॥ ११० ॥ त्रुत्यते वा गुणो यत्र प्रथमे वाणमोक्षणे ॥ श्रमं न  
 तत्र न कुर्वीत शश्वे मतिमर्तावरः ॥ १११ ॥ अथ श्रमकिया ॥ किया-  
 कलापान्वक्ष्यामि श्रमसाध्याभ्युचिष्मताम् ॥ येषां विज्ञानमात्रेण  
 विति नान्यथा ॥ १२ ॥ प्रथमं चापमारोप्य चूलिकां वंधये-  
 ततः ॥ स्थानकं तु ततः कृत्वा वाणोपरि करं न्यसेत् ॥ १३ ॥  
 धनुपश्चैव कर्तव्यं वामपाणिना ॥ आदानं च ततः कृत्वा  
 ततः परम् ॥ १४ ॥ सकृदाकृपृच्छापेन भूमिवेदं न कार-



किंतं यस्य ह्यथवा हीनपत्रकम् ॥३३॥ कर्करोतं तु चापेन यः कृष्णे  
हीनमुष्टिना ॥ मत्स्यपुच्छा गतिस्तस्य सायकस्य प्रकीर्तिता ॥३२॥  
अमरी कथिता ह्येषा सद्विस्तु अमकर्मणि ॥ कङ्गुत्वेन विना  
याति क्षेप्यमाणस्तु सायकः ॥ ३३ ॥ अथ वाणानां लक्ष्यस्खल-  
नगतयः ॥ वामगा दक्षिणा चैव ऊर्ध्वगाऽधोगमा तथा ॥ चतुस्रो गत-  
यः प्रोक्ता वाणस्खलनहेतवः ॥ ३४ ॥ कंपते गुणमुष्टिस्तु मार्गण-  
स्य तु पृष्ठतः ॥ संमुखी स्याद्बुर्मुष्टिस्तदा वामे गतिर्भवेत् ॥३५॥  
ग्रहणं शिथिलं यस्य कङ्गुत्वेन विवर्जितम् ॥ पार्श्वे तु दक्षिणं याति  
सायकस्य न संशयः ॥३६॥ ऊर्ध्वं भवेत्त्वा पमुष्टिर्गुणमुष्टिरधो भवेत् ॥ स  
मुक्तो मार्गणो लक्ष्यादूर्ध्वं याति न संशयः ॥३७॥ मोक्षणे चैव वाणस्य  
चापमुष्टिरधो भवेत् ॥ गुणमुष्टिर्भवेदूर्ध्वं तदाऽधोगामिनी गतिः ॥३८॥  
अथ शुद्धगतयः । लक्ष्यवाणाश्रद्धीनां संगतिस्तु यदा भवेत् ॥ तदा  
नां मुंचितो वाणो लक्ष्यात्र स्खलति ध्रुवम् ॥ ३९ ॥ निर्दोषः  
शब्दहीनश्च सममुष्टिद्योजित्वातः ॥ भिनत्ति दृढवेध्याने सायके  
नास्ति संशयः ॥३१॥ स्वाकृप्रस्तेजितो यश्च सुशुद्धो गाढमुष्टितः ॥  
नरनागाथकायेषु न तिष्ठति स मार्गणः ॥ ४१ ॥ यस्य तृणसमा  
वाणा यस्येधनसमं धनुः ॥ यस्य प्राणसमा मौर्वीं स धन्वी धनि-  
नां वरः ॥ ४२ ॥ अथ दृढचतुष्पक्षम् ॥ अयश्चर्म घटश्चैव मृत्पिण्ड-  
चतुष्यम् ॥ यो भिनत्ति न तस्येषु वृत्तेणाऽपि विदार्थ्यते ॥ ४३॥  
सार्द्धागुलप्रमाणेन लोहपत्राणि कारयेत् ॥ तानि भित्त्वैकवाणेन दृ-  
वाती भवेत्वरः ॥४४॥ चतुर्विंशतिचर्माणि यो भिनत्तीषुणा नरः ॥ तस्य  
वाणो गजेन्द्रस्य कायं निर्भिद्य गच्छति ॥४५॥ ऋम्यञ्जले घटो वेद्य-  
श्चके मृत्पिण्डकं तथा ॥ अमंतं वेदयेदो हि दृढभेदीं स उच्यते ॥४६॥  
अयस्तु काकतुंडेन चर्मं चारामुखेन हि ॥ मृत्पिण्डश्च घटश्च  
उपेत्पूर्वे उलेन हि ॥ ४७॥ अथ चित्रविधिः ॥ वाणभंगकरात्



चंडीं गुरुं शश्वाणि वाजिनः ॥ ६४ ॥ विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्ता  
 कुमारीं भोजयेत्ततः ॥ देव्यै पशुवल्लिं दद्याद्घटो वादित्रमंगलैः ॥ ६५ ॥  
 ततस्तु साधयेन्मन्त्रान्वेदोक्तान्वागमोदितान् ॥ अस्त्राणां कर्मसिद्ध्य-  
 र्थं जपहोमविधानतः ॥ ६६ ॥ त्राह्णं नारायणं शैवमैद्रं वायव्यवाहणे ॥  
 आग्रेयञ्चापरास्त्राणि गुरुदत्तानि साधयेत् ॥ ६७ ॥ मनोवाक्कर्मभे-  
 र्भाव्यं लब्धास्त्रेण शुचिष्मता ॥ अपात्रमसमर्थं च दहन्त्यस्त्राणि  
 पूरुषम् ॥ ६८ ॥ प्रयोगं चोपसंहारं यो वेत्ति स धनुर्दरः ॥  
 सामान्ये कर्मणि प्राज्ञो नैवास्त्राणि प्रयोजयेत् ॥ ६९ ॥  
 अथ स्कांदोक्तकतिचिदस्त्रस्वरूपमप्युच्यते ॥ अथास्त्राणि प्रवक्ष्यामे  
 सावधानोऽवधारय ॥ त्राह्णास्त्रं प्रथमं प्रोक्तं द्वितीयं त्राह्णदण्डकम् ॥ ७० ॥  
 त्राह्णशिरस्तृतीयं च तुर्यं पाशुपतं मतम् ॥ वायव्यं पंचमं प्रोक्तमाग्रे-  
 यं पष्टकं स्मृतम् ॥ ७१ ॥ नारासिंहं सप्तमं च तेषां भेदा द्वान्तं-  
 काः ॥ ससंहारं सविज्ञेयं शृणु द्वोण यथातथम् ॥ ७२ ॥ वेदमा-  
 त्रा सर्वशस्त्रं गृह्णते दीप्त्यतेऽथवा ॥ तत्प्रयोगं शृणु प्राज्ञ त्राह्णास्त्रं  
 प्रथमं शृणु ॥ ७३ ॥ दादिदन्ताच्च सावित्रीं विपरीतां जपेत्सुधीः ॥  
 जन्त्वा पूर्वा निखर्वं चाभिमन्त्र्य विधिवच्छरम् ॥ ७४ ॥ शिष्ठेच्छुभु  
 सहसा नश्यन्ति सर्वजातयः ॥ वाला वृद्धाश्च गर्भस्था ये च योदु  
 समागताः ॥ ७५ ॥ सर्वे ते नाशमायांति मम चैव प्रसादतः ॥ ७६ ॥  
 धाक्मं दादिदंतं जपेत्संहारसिद्धये ॥ ७६ ॥ तस्य स्वरूपम् ॥ ७७ ॥  
 दयाद्चोप्रनोयोयोधिहिमधीस्त्यवदेगोभण्यरेवतुविसतदूस्वोवभुंभूयो  
 म् ॥ इति प्रयोगः ॥ अथसंहारः ॥ ७८ ॥ भूभुवःस्वःतत्सवितुवरेण्यंभग्नेरि-  
 वस्त्यर्थमीह धियोयोनःप्रचोदयात् ॥ इति संहारः ॥ त्राह्णदंडं प्रवक्ष्यामि  
 प्रग्रनं पूर्वमुद्यरेत् ॥ ततः प्रचोदयाङ्गेयं ततो नो यो धियः कमात्  
 ॥ ७९ ॥ ततो धीमाहि देवस्य ततो भग्नं वरेणियम् ॥ सवितुस्त्र-  
 लक्ष्यममुकदात्रुं तथेव च ॥ ८० ॥ ततो हनहनं हुंफद्द जता पूर्ण



स्त्वेषां पनुयेदे शुनताः परिकीर्तिताः ॥ ९८ ॥ इति केदारसंडे  
 थ्रीशयेन द्वोणं प्रति प्रोक्तम् ॥ अथ शश्नाप्तम् । हस्ताक्षं लांग-  
 लीकन्दो गृहीतस्तस्य उपेतः ॥ शुगस्य नरणे पुंसो दृष्ट्याहृति  
 कातरः ॥ ९९ ॥ गृहीत्वा योगनक्षेत्रपामागस्य मृलकम् ॥ लेप  
 मात्रेण वाराणां सर्वशश्नानिवारणम् ॥ २०० ॥ अथः पुष्पी शंख  
 पुष्पी लचालुर्गिरकर्णिका ॥ नारिनी सहदेवी च पुत्रमानांक  
 तथा ॥ १ ॥ विष्णुकांता च सर्वांसां जटा शाश्वा खेदिने ॥ शद्वा भुजे  
 विलेपाद्मा काये शश्वापवारकाः ॥ २ ॥ सर्वश्वाप्रादिसत्तानां भूता-  
 दीनां न जायते ॥ भीतिस्तस्य स्थिता यस्य मातरोऽष्टो शरी-  
 रके ॥ ३ ॥ गृहीतं हस्तनक्षत्रे शृणु छुच्छुंद्रीभवम् ॥ तत्प्रभावाहृत-  
 पुंसः संमुखेनैति निश्चितम् ॥ ४ ॥ च्छुच्छुंद्रीथ्रीफलपुष्पनूरूपालित-  
 गावस्य नरस्य दूरात् ॥ आश्राय गंधं द्विदोऽतिमत्तो मदं त्वं नै-  
 त्केसरिणो यथोग्रम् ॥ ५ ॥ शेताद्रिकर्णिकामूलं पाणिस्यं वारयेहृजम् ॥  
 शेतकंटारिकामूलं व्याप्रादीनां भयं हरेत ॥ ६ ॥ पुष्प्याकोंत्पादिते  
 मूले पाठाया मुखसंस्थिते ॥ देहं स्फुटति नो तीक्ष्णमंडलाये रो-  
 नृणाम् ॥ ७ ॥ गंधार्घ्या उत्तरं मूलं मुखस्थं संमुखागतम् ॥ शश्वीवं  
 वारयेत्तत्र पुष्प्याके विधिनोद्भृतम् ॥ ८ ॥ विधिरुपवासः ॥ शुभ्राया-  
 शरपुंखाया जटा नीलीजटाऽथवा ॥ भुजे शिरसि वक्रे वा स्थिता  
 शश्वानिवारिका ॥ भूपाहिचोरभीतिश्री गृहीता पुष्प्यभास्करे ॥ ९ ॥  
 अथ संग्रामविधिः । प्रथमं क्रियते स्नानं शुक्लवश्वावृतो भवेत् ॥ मंग-  
 ल्यगीतसंयुक्तो देवविप्रांश्च पूजयेत् ॥ २१० ॥ क्षेत्रपालस्य नामा-  
 च वल्लं दद्यादिशो दश ॥ शश्वाणि चापि संपूज्य रक्षामंत्रं स्मर-  
 ततः ॥ ११ ॥ मंत्रश्च ॥ ओंमूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्डेन चांविके ॥  
 वंटास्वनेन नः पाहि चापञ्चानिस्वनेन च ॥ १२ ॥ प्राच्यां रक्षा प्रती-  
 च्यां च चंडिके रक्षा दक्षिणे ॥ ब्रामणेनात्मशूलस्य चोत्तरस्यां तथे ॥



तथाश्वानां शतानि च ॥ २९ ॥ दशोत्तराणि पद् प्रादुः संख्यातत्त्वविदो  
जनाः ॥ २३ ॥ अथ महाक्षोहिणी ॥ सद्यं निधिवेदाक्षिन्द्राद्याप्नी  
मांशुभिः ॥ १३'२१'२४'०'०० ॥ महाक्षोहिणिका प्रोक्ता संख्या-  
गणितकोविदेः ॥ ३१ ॥ कोट्यस्त्रयोदशा प्रोक्ता लक्षणामेकत्व-  
शतिः ॥ चतुर्विंशतसहस्राणि तथा नव शतानि च ॥ ३२ ॥ महाक्षो-  
हिणिकां प्रादुस्संख्यातत्त्वविदो जनाः ॥ ३३ ॥ महाक्षोहिणिकायां  
तु रथाः कोटिमिताः स्मृताः ॥ अथाश्वतुः कोटिमिता लक्षण्ये-  
कादशेव च ॥ ३४ ॥ प्रोक्तानि नवतिस्तद्वदेवमेव गजा मताः ॥  
गजाश्वतुः कोटिमिता लक्षण्ये कादशेव च ॥ ३५ ॥ सत्तर्विंशतसहस्राणि  
तथा नव शतानि च ॥ कोचित्तु । महाक्षोहिणिकां प्रादुरिमां तत्त्वविदो  
जनाः ॥ ३६ ॥ महाक्षोहिणिकायां तु रथाः कोटिमिताः स्मृताः ॥  
सप्तविंशत्त्रय लक्षणे गीयते तत्त्ववेदिभिः ॥ ३७ ॥ द्वादशेव सहस्राणि  
चत्वार्येव शतानि च ॥ प्रोक्तानि नवतिस्तद्वदेवमेव गजाः स्मृताः ॥  
॥ ३८ ॥ अथाश्वतुप्कोटिमिता लक्षण्ये कादशेव च ॥ सप्तविंशतसहस्रा-  
णि तथा शतचतुर्षयम् ॥ ३९ ॥ सप्ततिथेव संख्याताः प्रोच्यते  
मत्तयस्ततः ॥ पद्कोल्पोशीतिलक्षणे पंचाधिकमितानि च ॥ २४ ॥  
द्विपष्टिश्च सहस्राणि तथा शतचतुर्षयम् ॥ पंचाशादिति  
संख्याता महाक्षोहिणिका बुधैः ॥ ४१ ॥ अथ व्यूहविधिः ॥  
मुखे रथा गजाः पृष्ठे तत्पृष्ठे च पदातयः ॥ पार्श्वयोश्च हयाः कार्या  
व्यूहस्थाय विधिः स्मृतः ॥ ४२ ॥ अद्वचन्द्रञ्च चकञ्च शकटं मक-  
रं तथा ॥ कमलथ्रेणिका गुरुर्म व्यूहान्येवं प्रकल्पयेत् ॥ ४३ ॥  
अथ युद्धविधिः ॥ ये राजपुत्राः सामन्ता आताः सेवकजातयः ॥  
तान्सर्वानात्मनः पार्थे रक्षायै स्थापयेन्नृपः ॥ ४४ ॥ यस्मिन्कुले यः  
रूपः प्रधानः स सर्वयत्नेन च रक्षणीयः ॥ तस्मिन्विनष्टे किल सार-  
न नाभिभंगे अरका वहांति ॥ ४५ ॥ क्षत्रं सारभृतां शूरं शत्रु-



वेदस्य प्रयोजनम् । गीतं गानशिक्षागीतनिर्माणम् । स्वरजातिराखे-  
दास्तालभावादिरचनाप्रकाराः । साधकवाधकस्वरादिमेलनपर्य-  
ज्ञानश्च 'स्वरगं पदगं चैव तथा लयगमेव च चेतोवधानं चैव गेयं  
ब्रूयुश्चतुर्विधम् ॥' स्वरादिभेदा अनन्ता रागाश्च भैरवथ्रीरागादिभेद-  
ेन पोढाऽप्यवांतरभेदैरनन्ता एव । तालश्च क्रियामानं क्रियाऽप-  
वापनिष्क्रमादिक्या मानं परिच्छेदः । लयश्च गीतवाद्यपादादिन्या-  
सानां क्रियाकालयोः साम्यम् । वाद्यं घनं तथानद्धं ततं सुप्रिमेव  
च । कांस्यपुष्पकरतंत्रीभिवेणुना च यथाक्रमम् ॥ एतदेवामरेणाऽप्य-  
कं 'ततं वीणादिकं वाद्यमानद्धं मुरजादिकम् । वंशादिकं तु सुर्पं  
कांस्यतालादिकं घनम् ॥ चतुर्विधामिदं वाद्यम्' इति । तत्र 'नृत्यं कृ-  
तानुकरणं नाट्यं तु नर्तकात्रयम् । करणान्यंगहाराश्च विभावो भा-  
व एव च ॥ अनुभावो रसाश्चेति संक्षेपान्नृत्यसंग्रहः ॥' इति । करणानि  
साधनानि ॥ अंगहारोऽग्निक्षेपः । विशेषेण भावयन्त्युत्पादयांति रस-  
मिति विभावाः । स्त्रीवसंतोद्यानादयः रसकारणानि । अनुभूयते ल-  
क्ष्यरस एभिरित्यनुभावाः । कंपस्वेदादीनि रसकार्याणि भावाः साति-  
काः स्तं भावयो व्यभिचारिणश्च धृतिस्मृत्यादय एतौ रुल्कपंमारोप्य-  
माणोऽव व्यंजितः स्थायीभावो रत्यादिः शृंगाररसरूपो भवतीति  
तत्त्वम् ॥ अथ च किञ्चिद्रांघवं वेदप्रक्रियामपि द्वूमः । प्रणम-  
सर्वदेवेशं शिवं ब्रह्मादिकांस्ततः ॥ गांधर्वशास्त्रसंक्षेपः सारतो  
इयं मयोच्यते ॥ १ ॥ यदुक्तं ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मग्रंथिश्च  
यो मतः ॥ तन्मध्ये संस्थितः प्राणः प्राणाद्विहिसमुद्भवः ॥ २ ॥

तसंयोगान्नादः समुपजायते ॥ न नादेन विना गीतं न  
नादेन विना स्वरः ॥ ३ ॥ न नादेन विना वाद्यं नाट्यं नादं विना  
न हि न नादेन विना नृत्यं तस्मान्नादात्मकं जगत् ॥ ४ ॥  
पवनाजायते नादो नादतः स्वरसंभवः ॥ स्वरात्संजायते राम-



व्याकुलं तालहीनश्च गातुदोपाश्चतुर्दश ॥२१॥ अथ सालगसूढः ।  
 हिमवत्कन्यकाप्रीत्यै देवदेवेन शंभुना ॥ शुद्धरागाद्विनिष्पीञ्च  
 सरसं सालगं कृतम् ॥२२॥ शुद्धरागसमुत्पन्नं छायालगमनोहरम् ।  
 अवलालालगोपालक्षितिपालैः सगीयते ॥२३॥ आद्यो ध्रुवस्ततो  
 मंठः प्रतिमंठो निशारुकः ॥ अहुतालस्ततो रास एकताली च  
 संमता ॥२४॥ अथैषु ध्रुवकलक्षणम् ॥ न विवेकं विना ज्ञानं  
 ध्यानं नात्मरसं विना ॥ श्रद्धया न विना दानं गानं न ध्रुवकं  
 विना ॥२५॥ उत्तमः पट्टपदैः प्रोक्तो मध्यमः पंचभिस्तथा ॥  
 कनिष्ठस्तु चतुर्भिः स्यादेवं स्युर्धुवकाण्डिधा ॥ २६॥  
 एकधातुर्द्विखंडः स्याच्छत्रोद्वाहस्ततः परम् ॥ तृतीयं किञ्चिदुच्चं  
 स्यात्खंडं गमकशोभनम् ॥२७॥ ततो द्विखंड आभोगस्तृतीयं तं  
 स्य खंडकम् ॥ उच्चं गमकयुक्तं वा नवा स्वाम्यंकितं च तत् ॥२८॥  
 उद्वाहस्याद्यखंडे च न्यासः स ध्रुवको भतः ॥ एवं हि पट्टपदः प्रोक्त  
 उत्तमो ध्रुवको बुधैः ॥२९॥ पंचपादस्य तूद्वाहे पदयुग्मं प्रशस्य  
 ते ॥ तृतीयं चोच्चखंडं स्याद्विरभ्यस्तमिदं ब्रयम् ॥३॥ आभोग-  
 शैकखंडः स्याद्वितीयं चोच्चखंडकम् ॥ तुल्यनामांकितं चैतदिति  
 मध्यमलक्षणम् ॥३१॥ चतुष्पादस्य तूद्वाहे पदैकं स्यात्ततः परम् ॥  
 किञ्चिदुच्चं द्वितीयं स्याद्विरभ्यस्तमिदं द्वयम् ॥३२॥ आभोगे च तपै-  
 कं स्यात्काचिदुच्चं द्वितीयकम् ॥ अभुनामांकितं चैतत्कनिष्ठस्येति ल-  
 क्षणम् ॥३३॥ पण्णां पदानां वा वर्णनियमो वा द्वयोर्भवेत् ॥ पदयोर्भ-  
 ानियमो ध्रुवाणां हि द्विधा गतिः ॥३४॥ पदद्वये यदा वर्णनि-  
 यमः क्रियते बुधैः ॥ तदा पदानि चास्थानि भवन्ति नियमं विना  
 ॥३५॥ एकादशाक्षरात्पादादेकैकाक्षरवद्वितैः ॥ खंडध्रुवाः पोड-  
 स्युः पाङ्कशत्यक्षरावधिः ॥३६॥ रमतालादिवर्णश्च ध्रुवाणां उ-  
 क्षणं शुभम् ॥ प्रोक्तं रागार्णवे सर्वं संक्षेपादिह कथ्यते ॥३७॥ अभ्य



धीयते ॥ ६३ ॥ द्रुतद्रयं लघुद्रदं ताले त्रिपुटसंज्ञके ॥ स यथा (००) एक-  
विश्वातिवर्णाग्रिभवेच्छृंगारके रसे ॥ ६४ ॥ कामदोभीष्टदः पुंसां तालके  
तुरलीलके ॥ द्रुतद्रयं लघु चांते तालः स्यात्तालकेतुकः ॥ स यथा (००)  
विजयाक्षो ध्रुवः स स्याद्वार्विश्वात्यक्षरांग्रिकः ॥ ६५ ॥ स विपाते  
संयुक्तः शृंगारेऽभीष्टदो रसे ॥ एक एव गुरुर्यत्र सविपातः स  
कथयते ॥ ६६ ॥ स यथा (०५) वयोविश्वातिवर्णाग्रिध्रुवः कंदपैसंज्ञकः ॥  
वीरे वा करुणे वा स्यात्खंडताले विधीयते ॥ ६७ ॥ द्रुतमेकं भवेत्  
तालोऽयं खंडसंज्ञकः ॥ स यथा (०) द्विप्रदादशवर्णाग्रिस्तालो वा  
खंडके भवेत् ॥ ६८ ॥ वीरशृंगारसयोर्जयकृजयमंगलः ॥ द्रुतद्रयं  
विरामातं लघुनेकेन रूपकः ॥ ६९ ॥ स यथा (००) पंचविश्वासौ  
पादो यस्यासौ ललिताद्वयः ॥ ताले वाचपुटे गेयो वीरेवाप्यद्वृते  
अपि वा ॥ ६० ॥ तालं वाचपुटं ज्ञेयं गुरुर्लघुयुगं गुरुः ॥ स  
यथा (५ ॥ ५) यः पांचश्वातिवर्णाग्रिः स स्यात्सर्वार्थसिद्धिः  
॥ ६१ ॥ ललितश्वपुटाख्ये च ताले शृंगारपोपकः ॥ ताले च  
चपुटे ज्ञेयं गुरुद्रदं लघुस्ततः ॥ ६२ ॥ स यथा (५१) इति  
पोडश ध्रुवाः ॥ अथ मंठकलक्षणम् ॥ उद्ग्राहो ध्रुपदश्व स्यादाभे  
गस्तदनंतरम् ॥ नियमस्त्रिविधो ज्ञेयो मंठकस्य विचक्षणः ॥ ६३ ॥  
जयप्रियः कलापश्व कमलस्सुंदरस्तथा ॥ वल्लभो मंठलश्वेति पृष्ठे  
ते मंठका मताः ॥ ६४ ॥ लघुर्गुरुर्लघुर्यत्र स तालो हंसकः स्मृतः ॥  
तालश्वायं रसे वीरे कर्तव्यो जयमंठके ॥ ६५ ॥ हंसतालः ( ५ )  
रंगताले हु विज्ञेयो लघुश्वेको गुरुद्रयम् ॥ कलापो मंठकस्तते रु  
रोऽग्राभियानके ॥ ६६ ॥ रंगतालः ( ५५ ) लघुद्रयं गुरुश्वेकस्तालोऽयं  
दर्पणः स्मृतः ॥ अस्तिमस्ताले रसे शांते कमलो मंठको भवेत्  
॥ ६७ ॥ दर्पणतालः ( ५५ ) गुरुद्रयं लघुद्रदं ताले त्रिपुटसंज्ञके  
सुंदरो गीयते तेन वीरे वाप्यद्वृते रसे ॥ ६८ ॥ त्रिपुटतालः ( ५५ )



लघुशेखरः ( १५ ) द्रुतद्रयं विग्रामांतं लघुनेकेन संयुतम् ॥  
जयतालो भवेत्तेन गेयः शति शुभोत्तमः ॥ ८२ ॥ विज्ञा-  
यतालः ( ०० । ) उमातिलकताले तु द्रुतो लघुगुरु स्मृतो ॥  
चाराख्यस्त्वइतालः स्थादिद्विस्तेन गीयते ॥ ८५ ॥ चाराख्या-  
इतालः ( ०० । ५ ) लुतमेकं द्रुतो द्वौ च वनमालिनि तालके ॥  
निःसंगस्त्वइतालः स्थादुपेस्तेनेव गीयते ॥ ८६ ॥ वनमाली ( ०० )  
राजतालाभिधाने तु लघुद्रुतो लघुः स्मृतः ॥ अनेन तु समायुक्ते  
मकरंदस्त्वइतालकः ॥ ८७ ॥ राजतालः ( १० । ) अथ रासकलत्तणा-  
नि ॥ चतुर्द्वा रासकाः प्रोक्ता गीतवाद्यविशारदः ॥ विनोदो वरदो  
नंदः कंबुजश्चेति कीर्तिः ॥ ८८ ॥ एक एव लघुर्येव ह्यादितालः  
स कथ्यते ॥ विनोदो रासकस्तेन गातृश्रोतुसुखावहः ॥ ८९ ॥  
आदितालः ( । ) लघुद्रुतो गुरुर्येव तालोयं गजलीलकः ॥ वरदो  
रासको गेयः श्रोतृणां च सुखावहः ॥ ९० ॥ गजलीलकः ( १० । )  
तथा गुरुरेकव्र तालो विद्याधरः स्मृतः ॥ यत्रासौ रासको नंदो गीय-  
तेऽभ्युदये शुभः ॥ ९१ ॥ विद्याधरः ( ५५ ) राजविनोदे ताले स्या-  
द्गुरुद्वंद्वमय लुतः ॥ रासकः कंबुजस्तेन गीयते गीतिकोविदैः ॥ ९२ ॥  
राजविनोदः ( ५५५ ) अथैकतालीलक्षणम् ॥ एकताली विधा प्रोक्ता  
गीतवाद्यविशारदैः ॥ रामा च चंद्रिका तद्विपुलेत्यथ लक्षणम् ॥ ९३ ॥  
द्रुतमेकं भवेद्यव्र तालोऽयं खंडसंज्ञितः ॥ रामा तनैकताले तु  
गीयते गायकोत्तमैः ॥ ९४ ॥ खंडतालः ( ० ) गुरुद्वयं भवेद्यव्र ताले  
ललितसंज्ञितः ॥ चंद्रिका चैकताली स्यात्तेन सौभाग्यदायिनी ॥ ९५ ॥  
ललितः ( ५५ ) कोकिलाप्रियताले वै द्रुतव्यमुदाहृतम् ॥ विपुल  
चैकताली स्यात्तेन गीतज्ञसंवत्ता ॥ ९६ ॥ कोकिलाप्रियः ( ००० ) ॥  
एते ध्रुवाः ॥ जयंतश्च तथोत्साहो नंदनश्चेद्वशेखरः ॥ कामदो वि-  
जयाख्यश्च कंदर्पजयमंगलौ ॥ ९७ ॥ अष्टध्रुवाः समाख्याता राजयो-



अजा वदति गांधारं कोंचो वदति मध्यमम् ॥ १३ ॥ पुष्पसाधने काले कोकिलः पञ्चमं वदेत् ॥ दंडरो धेवतं च निषादवदेहजः ॥ १४ ॥ हास्यशृंगारयोः कार्या स्वरो पञ्चममध्यमो पञ्चर्पभो तथा ज्ञेयो वीरांगाद्वाद्वते रसे ॥ १५ ॥ गांधारश्च निषादश्च च चंच्यो करुणारसे ॥ धेवतश्चेव कर्त्तव्यो वीभत्से च भयानके ॥ १६ ॥ चतुःश्रुतिश्चित्तुतिश्च द्विश्रुतिश्च चतुःश्रुतिः ॥ चतुःश्रुतिश्चित्तुतिश्च द्विश्रुतिश्चेति ते स्वराः ॥ १७ ॥ अथ पद्मविश्वत्प्रवत्तकरणी उच्यते ॥ भैरवः पञ्चमो नाटो मल्लारो गौडमालवः ॥ देशाप्यते पह्व रागः प्रोच्यते लोकविश्रुताः ॥ १८ ॥ वंगपालो गुण कारी मध्यमादिवसंतकः ॥ धन्याश्रीशेति पञ्चते रागा भैरवसंत्रिताः ॥ १९ ॥ ललिता गुर्जरी देवी विराटी रामकृत्तया ॥ मता रागार्णवे रागाः पञ्चते पञ्चमाश्रयाः ॥ २० ॥ नटनारायणः पूर्व गांधारः सालगस्तथा ॥ तथा कर्णाटकेदारो पञ्चते नाटसंथयाः ॥ २१ ॥ मेघमल्लारिका मालकौशिकः प्रतिमंजरी ॥ आसावरी च पञ्चते रागा मल्लारसंथयाः ॥ २२ ॥ हिंदोलस्त्रियुणा धाली गौडी की लाहलाल्तथा ॥ पञ्चते गौडनामानं रागमात्रित्य संस्थिताः ॥ २३ ॥ भूपाली हरिपालश्च कामोदी धोरणिस्तथा ॥ वेलावली च पञ्चते रागा देशापसंस्थिताः ॥ २४ ॥ अन्येऽपि वहवो रागा जाता देशविशेषतः ॥ मारुप्रभृतयो लोके ते च भद्रेशिकाः स्मृताः ॥ २५ ॥ श्रीआदिपुराणेतु । भैरवो मुख्यरागश्च द्वितीयो मालकौशिकः ॥ हिंदोलकस्तुतीयस्तु चतुर्थो दीपकः स्मृतः ॥ २६ ॥ पञ्चमो मेघनादश्च श्रीरागः पष्ठ उच्यते ॥ एतेषां पञ्च पञ्च स्युः पल्लव पण्णां सुशोभनाः ॥ २७ ॥ पूर्व भैरवपत्न्यस्तु पञ्चताः शृणु नारद ॥ भैरवी नटनाम्बी च तथा मालसिरी मता ॥ पटमंजरी चतुर्थी स्थानलिता पञ्चमी मता ॥ २८ ॥ मालकौशिकपत्रीनां नामानीमानि मे शृणु



सालस्यगत्रा विदिता च गौडी ॥ ६९ ॥ नीलं वसाना वस-  
नं सुवेपा वने रुदंती पिकनाददूती ॥ विलोकयंती ककुभोऽथ भी-  
ता मूर्तिः प्रदिष्टा ककुभः श्रेयेम् ॥ ७० ॥ प्रातः समुत्थाय पि-  
यांकमध्ये तत्केलिचिह्नाकलितानिमित्ता ॥ सालस्यते व्रा प्रतिवेष-  
यंती खगान्दुमस्थांश्च विभासनाम्नी ॥ ७१ ॥ मनोज्ञमौंजीगुणगुण्ठि-  
तांगा त्वचं दधाना धरणीरुहस्य ॥ चंडा कुमारी कमनीयमूर्तिर्वै-  
गालिका गायनकेषु मुख्या ॥ ७२ ॥ सदारंगारतिरभसकांतवदना  
मदोन्मत्ता पतिपदालिंगितकरा ॥ वरालापप्रेमपूरप्रसक्ता भक्तादैवी  
देवमोहातिसक्ता ॥ ७३ ॥ अथ श्रीरागः ॥ किरीटवान् रागसमान-  
मध्ये संगीतशालीयमदांगयष्टिः ॥ आतालमानाधिकृतौ विवेकी  
श्रीरागराजो वनिताभिकांतः ॥ ७४ ॥ शृंगारसंभारसमूहनांगा हानं-  
गलेखेव निजांगकांत्या ॥ प्रतसचामीकरचारुवर्णा श्रीमेवशाली  
मदनाभिमत्ता ॥ ७५ ॥ अब्जमालां करे धृत्वा वसाना रौर्खो  
त्वचम् । जपंती जाह्नवीतीरे मोदकातियशास्त्रिनी ॥ ७६ ॥ नीलं-  
शुकालंवितदेहपीडा विभ्रत्प्रभासाधरपद्मवक्रा ॥ इयामा सुवेपा  
दायितेन सार्जे केदारिकाब्जं दधती करेसा ॥ ७७ ॥ आसावरी मन्यव-  
चर्यहारिणी वकदशाध्वकुटिशोभितसुस्तितास्या ॥ मानोज्ञता का-  
न्तकराभिमर्शप्रमोदभारा विगता सदैव ॥ ७८ ॥ कामोदकी कामल-  
का विद्यधा शश्त्रतनौ हाटकतुल्यवर्णा ॥ कर्णातनेव्रा मदनांग-  
यष्टिर्नीलोत्पलं सा दधती मनोज्ञा ॥ ७९ ॥ मारुर्मनोत्साहविभा-  
सयंती कंदर्पसंपीडितदेहयष्टिः ॥ प्रियप्रवासातिवियोगिनी सा महा-  
वियोगेन सुतप्यमाना ॥ ८० ॥ एवमन्यत्रान्यथापि वर्णिता रागात्मे-  
च सर्वे एव योग्या एव ॥ तदुक्तमून रागाणां न तालानामंतः कुर्वा-  
पि विद्यते ॥ संतोपाय शिवस्त्यैते गेया त्रुधजनैः सदा ॥ ८१ ॥ तथा  
नयति केलासं न गंगा न सरस्तती ॥ यथा नयांति रागास्ते न्



भवेत् ॥ ९६ ॥ किंच । गीते घाये च नृत्ये च शक्तिः साधारणे  
गुणः ॥ सा चंदेतत्किमन्येन दूषणेन गुणेन च ॥ ९७ ॥ अर्थात्  
धानि ॥ गुद्धच्यपामार्गविडंगशांखिनीविचाभयाकुष्ठशतावरीसमा ॥  
घृतेन लीढा प्रकरोति पुंसां विभिर्दिनेर्गांतसहस्रधारणम् ॥ ९८ ॥  
देवदारुदलोद्धृतरसो मधुधृतान्वितः ॥ पीतः पद्याशिनः कुर्याद्गते  
मुखरता भृशम् ॥ ९९ ॥ वासा व्राह्मी वचा कुष्ठं पिपली मधुसं-  
युता ॥ सप्तरात्रप्रयोगेण किन्नरैः सह गीयते ॥ २०० ॥ वृद्धदारु-  
कमूलं हि यो लिद्यान्मधुसर्पिंपा ॥ सप्ताहक्षीरयूपाशी किन्नरैः सह  
गीयते ॥ १ ॥ वीजपूरफलं जातीपत्रं जंबीरजं तथा ॥ एनोपाय  
कलायात्र पिप्पल्या सह चृण्येत् ॥ २ ॥ मधुना चावलीठं तु केंठं सु-  
स्वरता नयेत् ॥ इति गांधर्ववेदोद्धृतसारः ॥ ॥ अथ रसशास्त्रं च वहु-  
विधं भरतेनैव प्रणीतम् । तच रसरीतिशब्दालंकारार्थालंकारनाय-  
कनायिकादिवर्णनरूपम् ॥ तथा हि । साधुपाकेष्यनास्वाद्यं भोज्यं  
निर्लब्धं तथा ॥ तथैव नीरसं काव्यं न स्याद्रसिकतुष्टये इति ॥  
तत्र रसत्वमंगांगिभावापन्नसकलविभावादिसाक्षात्कारकत्वम् ॥  
विशेषणं विभावानुभावसंचारिभावस्थायीभावा इत्येवमाकारकस-  
मूहालम्बनवारणाय । रसत्वं च जातिरिति ॥ केचित्तु-कारणेनाय  
कार्येण सहकारिभिरेव च ॥ व्यक्तत्वं नीयमानस्तु स्थायीभावो  
रसः स्मृतः ॥ कारणमङ्गनानवयौवनादि ॥ कार्याणि । स्तंभः स्ते-  
दोऽथ रोमांचः स्वरभंगोऽथ वेष्युः ॥ वैवर्ण्यमञ्चुप्रलपावित्यर्थ-  
सात्त्विका मताः ॥ सहकारिणः उद्यानादयः ग्लान्यादयश्च ॥ यदहुः ।  
विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः ॥ आरोप्यमाण उत्कर्ष-  
स्थायीभावो रसः स्मृतः ॥ तं विभजते । शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीर-  
भयानकाः ॥ वीभत्साद्धृतशांतात्र काव्ये नवरसाः स्मृताः ॥ तत्र  
संभोगो विप्रलभश्च शृंगारो द्विविधः स्मृतः इति ॥ तत्र स्त्रीपुंसरु-



रतिनाम प्रकर्पमधिगच्छति ॥ नाभिगच्छति चाभीष्टं विप्रलंभः स  
उच्यते ॥ अभीष्टं स्त्रीपुंसलक्षणमेवास चापूर्वानुरागो मानात्मा प्रवाह  
करुणात्मकः ॥ विप्रलंभश्वतुद्दर्ढा स्यात्पूर्वपूर्वो द्वयं गुरुः ॥ तत्र  
स्त्रीपुंसयोर्नवालोकदेवोल्लिसितरागयोः ॥ ज्ञेयः पूर्वानुरागोऽयमला  
भादतिकामयोः ॥ यथा । प्रेमाद्रीः प्रणयस्पृशः परिचयादुद्गाद-  
रागोदयास्त्तास्ता सुग्रहदशो निसर्गमधुराश्वेषा भवेयुर्मयि ॥ यात्म-  
तःकरणस्य वाह्यकरणव्यापाररोधी क्षणादाशंसापरिकलिपतास्त्रापि  
भवत्यानंदसांद्रोलयः ॥ अथान्यावनितासत्तमवगम्यस्ववछभम् ॥  
ईप्यावशेन वैमुख्यमेप मान उदाहृतः ॥ यथा । सा पत्युः प्रणया-  
पराधसमये सख्योपदेशं विना नो जानाति सविभ्रमांगवलनावको-  
लिसंसूचनम् ॥ स्वच्छैरच्छकपोलमूलगलितैः पर्यस्तनेत्रोत्पला वाला  
केवलमेव रोदिति लुठलोलालकैरश्रुभिः ॥ प्रवासः परदेशस्ये द्विती-  
यो विरहोद्भवः ॥ यथा । त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरां  
शिलायामात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ॥ अस्तेत्ता-  
वन्मुहुरूपचितैर्दृषिरालुप्यते मे क्रूरस्तस्मिन्नापि न सहते संगमं  
कृतान्त इति ॥ स्यादेकतरपंचत्वे दंपत्योरनुरक्तयोः ॥ शृंगा-  
करुणाख्योऽयमजस्येव रतेरिव ॥ १ ॥ अनु शृंगारस्य रतिप्रकृति  
त्वात्स्याश्च सुखसंवेदनरूपत्वात्स्यं च विप्रलंभेऽभावात्म क  
शृंगारभेद इति चेत्त्राथन्योहमस्याः कृते दशामिमामतुभवामि इति  
तत्रापि तदभिधानात् । श्रीपादस्तु । रतिर्भवाति देवादौ मुनौ षु-  
नुपे गुरो ॥ शृंगारस्तु भवेत्सैव पकांतविपया रतिः ॥ तत्र कें  
यथा । कंठकोणविनिविष्टमीशते कालकृटभापि मे महामृतम् ॥ अषु  
पात्तममृतं भवद्वपुर्भेदवृत्ति यदि मेन रोचते । मुनौ यथा । हरत्यं  
हेतुरेप्यतः शुभस्य पूर्वान्नरितेः कृतं शुभैः ॥ शरीरभाज्ञ  
दर्शनं व्यनक्ति कालवितयेऽपि योग्यताम् ॥ पुत्रे यथा ।



यानको भवेद्ग्रीतिप्रकृतिघोरवस्तुनः॥ सच प्रायेण वनितानीचवालेषु  
दृश्यते ॥ दिगलोकास्यशोपांगकं पगद्गदसंभ्रमाः ॥ स्तं भवेवर्णमो-  
हाश्च वर्ण्यते विद्वधैरिह ॥ यथा ॥ श्रीवाभंगाभिरामं मुहुरुपतति  
स्थंदने दत्तहपिः पश्चाद्देन प्रविप्रः शरपतनभयाद्भूयसा पूर्वकायम्॥  
शष्पैरर्द्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवत्मा यस्योदग्रह्णत-  
त्वाद्वियति वहुतरं स्तोकमुव्याप्तिप्रयाति॥८॥ वीभत्सः स्याज्जुगुप्सातः  
सोऽहृद्यथ्रवणेक्षणात् ॥ निष्ठीवनास्यभंगादि स्यादत्र सहतां न च ॥  
यथा । उत्कृत्योत्कृत्य कृत्ति प्रथममय पृथृत्सेधभूयांसि मांसान्य-  
सस्फिकपृष्ठपिंडाद्यवयवसुलभान्युग्रगंधीनि जग्ध्वा ॥ अतिः पर्यस्त-  
नेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरंकः करंकादंकस्थादस्थिसंस्थापुटकगत-  
मपि क्रव्यमव्ययमत्ति ॥७॥ विस्मयात्माद्गुतो ज्ञेयः स चासंभाव्यत-  
स्तुनः ॥ दर्शनाच्छ्रवणाद्गापि प्राणिनामुपजायते ॥ तत्र । नेत्रनेत्र-  
विकारः स्यात्पुलकः स्वेद एव च ॥ निष्पन्दनेत्रता साधुसाधुवा-  
दास्तथामताः ॥ चित्रं कनकलतायां शरदिन्दुस्तत्र सञ्जनदिति-  
यम्॥ तत्र च मनोजधनुपी तदुपरि गाढान्धकाराणि॥८॥ सम्यज्ञान-  
समुत्थानः शांतो निस्स्पृहनायकः॥ रागदेवपरित्यागे सम्यज्ञानस्य  
चोद्रवः ॥ पश्चात्तापः शरीरादियावद्गदस्तुविडंवनम् ॥ विवेकचित-  
स्थैर्यादियोगाद्यास्तस्य लक्षणम् ॥ यथा । अहौ वा हारे वा कुसुम-  
शयने वा दृपदि वा मणौ वा लोषे वा वलवति रिपौ वा सुहृदिवाः ॥  
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यांतु दिवसाः क्वचित्पुण्यारणे  
शिवशिवशिवेति प्रलपतः ॥९॥ स्त्रैणं स्त्रीसमूहः । अत्राहिरिख हारो  
हेयो न तु हारवदहिरप्युपादेय इति बोद्धव्यम्॥ अत्र सर्वत्र तत्तद्रस-  
त्वमावे उदादरणमिति स्मर्तव्यम्॥ अथ रसानां विरोधादिरोधावाहा-  
शुंगारहास्यो करुणवीभत्सी वीररोद्रको ॥ भयानकाद्गुतो मित्रे  
ः शांतो न कस्यचित् ॥ शांति करुणवीभत्सी न किंविद्दृष्टि



णाभितः काये स्थायिनं भावयन्ति ये ॥ अनुभूतादिहेवूस्तान्वदंति  
व्यभिचारिणः ॥ आदिपदात्स्वेदादिपरिग्रहः ॥ ते च । निर्वेदला-  
निशंकाख्यास्तथासूयामदथ्रमाः ॥ आलस्यश्वैव दैन्यञ्च चिन्ता मोहः  
स्मृतिर्धृतिः ॥ व्रीडा चपलता हर्षश्वावेगो जडता तथा ॥ गर्वे  
विपाद औत्सुक्यं निद्राऽपस्मार एव च । सुतं विरोधोमर्पश्चाप्यवहि-  
त्थमथोगता । मतिर्व्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेव च ॥ त्रास-  
श्वैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः ॥ अमी च प्रत्येकं भाव्यते  
क्वचित्सर्वभावतापि ॥ यथा । काकार्यं शशलक्ष्मण इत्यादौ काका-  
र्यमिति वितर्केः ॥ भूयोपि दृश्येत सत्यौत्सुक्यं दोपाणामिति  
मातिः । कोपेपीति स्मृतिः । किंवक्ष्यंतीतिशंका ॥ स्वप्रोपि सा दुर्छमे-  
ति दैन्यम् । चेतः स्वास्थ्यमुपैहीति धृतिः । कःखल्वित्यादिश्वेत-  
तीत्यत्र वहुवक्तव्यमस्तीह तु रेखामात्रमेव दर्शितमिति । तत्र रीती-  
राह । तत्तद्रसोपकारिण्यस्तत्तदेशसमुद्भवाः ॥ पद्येषु रीतयो गौडीवै-  
दर्भी मागधी तथा ॥ गौडी समासभूयस्त्वाद्वैदर्भी च तदलप्तः ॥  
अनयोः संकरो यस्तु मागधी सातिविस्तरा ॥ गौडीयैः प्रथमा मध्या  
वैदर्भमेथिलैस्तथा ॥ अन्यैस्तु चरमा रीतिः स्वभावादेव सेव्यते ॥  
तत्र गौडी यथा । उन्मीलन्मधुगंधलुब्धमधुपव्याधूतवृतांकुरकीड-  
त्कोकिलकाकलीकलकलैरुद्धीर्णकर्णज्वराः ॥ नीयंते पथिकेः कथं  
कथमपि ध्यानावधानक्षणप्राप्तप्राणसमासमागमरसोऽसैरमी वास-  
राः ॥ वैदर्भीयथा । मनीषिताः संति गृहेषु देवतास्तपः क वत्ते  
क च तावकं वपुः ॥ पदं सहेत ब्रमरस्य पेलवं शिरिपपुष्पं न  
पुनः पतञ्जिणः ॥ मागधीयथा ॥ पाणी पद्माधिया मधूवक्कुसुमप्रांत्या पु-  
र्नगिडयोनीलेंदीवरजङ्कया नयनयोर्धूकबुद्धचाधरे ॥ लीयंते क-  
रीपु वांधवजनव्यामोहजातस्पृहा दुर्वारा मधुपाः कियंति तर्ह-  
नि रक्षिष्यसि ॥ जयदेवस्तुपञ्चाली किञ्च लाटीया गौडी-



क्रमेणोदाहरणम् । अङ्गभङ्गोष्ठसछीला तरुणो स्मरतोरणम् ॥  
 तर्कचातुर्यपूर्णोक्तिप्राप्तोत्कर्पथियां वृथा ॥ वीप्सोत्सर्पन्मुखाश्वाद्व  
 वहीं जह्ने कृशस्तृपम् ॥ ललना रभसं धत्ते घनाटोपे विहायसि  
 ॥ २ ॥ तर्कशास्त्रस्य चातुर्येण कोशलेन पूर्णा या उक्तयस्ताभि  
 प्राप्तोत्कर्पी धीर्येपां तेपां स्मरस्य कामस्य तोरणं भूपणम् धोरणमि  
 ति पाठे वाहनमपि वृथा नानंदाय किन्तु परिशालितसाहित्याना  
 मेव सोपयुज्यत इति भावः । किम्भूता । अंगानां भंगैरचनादिभि  
 रुष्टसन्ती लीला यस्यास्सा तथा । हावादिनिपुणेत्यर्थः ॥ वीप्स  
 या मुहुर्मुहुरुत्सर्पदन्मुखाश्वं तस्याद्व यथा स्यात्तथा । वहीं मशूर  
 कृश आतुरः तृपं तृप्णां जह्नेऽपाचके । तथा ललना द्वीरभसं पतिसं  
 गेच्छावेगं धत्तेऽक सति । घनानां भेघानामाटोपस्संब्रमो यस्त्मस्ता  
 द्विशि विहायस्याकाशे सतीत्यर्थः । तोरणमित्यतं मधुरा । वृथे  
 त्यंतं प्रौढा । पमित्यंतं परुपा । घनेत्यंतं ललिता । शेषा भेद्रेति  
 ध्येयं मनीषिभिरिति वृत्तयः ॥ अथालंकाराः । तत्र चमत्कारविशेष  
 पकारित्वमलंकारत्वमिति सामान्यलक्षणम् ॥ शब्दार्थनिष्ठत्वे सति  
 चमत्कारकारित्वमिति विशेषपलक्षणम् । परंपरया रसोपकारित्वं  
 मलंकारत्वमित्यन्ये । ते च शब्दालंकारभेदेन द्रिधा । तत्र प्रथमा  
 नाह । चित्रवक्रोत्त्यनुप्राप्तगृह्णेषुपप्रहेलिकाः ॥ प्रश्नोत्तरस्य  
 यमकमप्तालंकृतयो ध्वनौ ॥ तत्र कौतुकविशेषपकारित्वं  
 चित्रत्वम् । तज्ज खङ्गचक्रपद्मादिभेदेनानन्तम् । यदाह ।  
 सर्वतोभद्रधेन्वादि गोमूत्रीमुरजादि च ॥ गतप्रत्यागताद्याहुश्चित्र-  
 काव्यं मुनीश्वराः ॥ किञ्चातचित्रं यत्र वर्णानां सङ्गाद्याकृतिहेतुतोति ॥  
 ३५५ ३५६ ३५७ ३५८ ३५९ यत्र न्यस्ता वर्णाः सङ्गमुरजाद्याकारमुद्यासयांति  
 काव्यम् ॥ कर्त्त काव्यमेतदिति दिङ्गमात्रं प्रदर्श्यते ॥ तत्र



पद्मवंधमाह । भासते प्रतिभासार रसाभाताहताविभा ॥ भाविता  
त्माशुभावादेवाभावत ते सभा ॥ १ ॥ हे प्रतिभया बुद्धच्च सार-

पद्मवंधः ।



श्रेष्ठ ते तव सभा भासते शोभते । वत हमें  
रसेनाभाता शोभिताहताऽविभाऽदीपिर्यत्या  
स्ता । यद्वाऽविना मेपेण भातीत्यविभो  
वहिर्हतो निरस्तोऽविभो यथा सा । भा-  
वितो वशीकृतो ध्यातो वा आत्मा-

मुरजयन्थः ।

| १ | १  | २ | ३ | ४  | ५  | ६ | ७  | ८  | ९ |
|---|----|---|---|----|----|---|----|----|---|
| ३ | स  | र | ल | व  | हु | ल | रे | म  | ३ |
| २ | त  | र | ल | रि | व  | ल | र  | वा | २ |
| १ | या | र | ल | व  | हु | ल | म  | द  | १ |
| क | र  | ल | व | हु | ल  | म | ल  | ५  |   |

१ भाशब्दं कर्णिकायां न्यस्याष्टदलेषु भाशब्दं द्वौद्वौ वर्णां निर्गमपवेशाभ्या  
लिखेत् । भाशब्दो मध्यस्यो निर्गमे प्रवेशो सर्वत्रान्वेति । दिग्दलेषु ४ आरो-  
हावरोहाभ्यां नाभो प्रवेशः विगिदलेषु सकुदवरोहणनामये ऐशाने च प्रति वते  
द्वौद्वौ वर्णां नैकस्त्वये वायव्ये च हतात्माशु इति द्वौद्वौ वर्णां सिद्धो ॥ एवमष्ट-  
दलेषु कर्णिकायां सप्तदशवर्णैङ्गोऽविशार्णनिर्वादितैपूर्वदलातान्मध्ये प्रवेशात्मग्रसि-  
द्धिरिति पद्मवंधः ॥

२ मुरजवंधमाह । सरलावहुलारंभतरलारिवलारवा ॥ वारलावहुलामंदकरलारवहु-  
लामला ॥ शरद्वर्णनम् । सरलावका शर्वोऽक्षरीति शरला वहुल आरंभ उदयो यस्य  
सः तरलानां चपलानामलिलिलानां द्विरेफस्तेन्यानां श्वः शास्त्रीयस्यां सा वारला  
भिर्हसीभिर्घुलाः सकुला भमंदः सोत्साहाः कर्ण्छाति स्वीकृत्यतीति वारला राजानो  
यस्यां सा भमहुठेन शुद्धपक्षेनामला वहुले कृष्णपक्षे नक्षत्रं रमला वा । अत्र याद-  
चतुर्थपञ्चिचतुर्थः विलिलायद्वितीयद्वितीयपादे सा वायद्वितीयतृतीयान् चतुर्थपञ्च-  
चतुर्थपञ्चमौ तृतीयद्वितीयायानां पष्टीपतंत्रयं त्यवर्णं रायः पादः ॥ १ ॥ द्वितीयायामायाद्विती-  
यीयद्वृतीयो द्वितीयद्वृतीयो चतुर्थपञ्चमौ चतुर्थपञ्चमौ द्वृतीयो  
पादः ॥ २ ॥ द्वितीयपतंत्रयमायात्सप्तमपदौ द्वितीयोः पंचमौ चतुर्थपञ्चमौ द्वृतीयो  
पादः ॥ ३ ॥ अंत्यद्वृतीयाय भायद्वितीयद्वृतीयो चायद्वितीयं चतुर्थपञ्चमौ

द्वितीयपतंत्रयानां .. . तु पादः ॥ ४ ॥ इति मुरजसिद्धिः ॥ २ ॥



लगृहापाङ्गभङ्गितराङ्गितः ॥ आलिङ्गितः स तन्वङ्गच्चा कृतार्थं  
 यतु मानसम् ॥ अनेकस्य व्यंजनस्य सकृत्साम्यं देकानुप्राप्तः ।  
 नितम्बगुर्वीं गुरुणा प्रयुक्ता वधूर्विधातृप्रातिमेन तेन ॥ चकार सा  
 मत्तचकोरनेत्रा लज्जावती लाजविमोक्षमग्नो ॥ पदमेकं हृदा कृता  
 तदनुप्राप्तकाम्यया ॥ आदिक्षांतलिपों कादिक्षांतशब्दं विचितये-  
 दिति रहस्यम् ॥ गूढं क्रियागुप्तादि । क्रियादिकं स्थितं यत्र  
 पदसंधानकोशलात् ॥ स्फुटं न लक्ष्यते तत्स्यात्क्रियागुप्तादिकं  
 यथा ॥ राजन्नव घनश्यामनिश्चिशाकर्पदुर्जय ॥ आकलपंचमुधामे-  
 नां विद्विषोद्य रणे वहून् ॥ अव योति द्वे क्रियापदे ॥ यथा । पुंस्को-  
 किलकुलस्यैतैर्नितांतमधुरारेवः ॥ सहकारादुमारम्यावसंते कामपि  
 त्रियम् ॥ अधुरव गुप्तमस्ति ॥ इदञ्च नाना यदाहुः । क्रियाकारकसं-  
 वंधगुप्तान्यामंवितस्य च ॥ गुप्तं यथा समाप्तस्य लिंगस्य वचनस्य  
 च ॥ १ ॥ क्रियागुप्तं तूक्तम् ॥ नकरोतु नास रोपं न वदतु परुपं न  
 हंत्वयो शहून् ॥ रक्षयति महीमसिलां तथापि वीरस्य धी-  
 रस्य ॥ शरदिन्दुकुंदधवलं कृतनगनिलयं भनो हरं  
 देवम् ॥ यैः सुकृतं कृतमनिशं तेषामेव प्रसादयति ॥  
 ॥ २ ॥ क्रमेण धीर्मनश्चेति कर्तृगुप्तम् ॥ सीकराकरसंदीर्घी सरोजवन-  
 मारुतः ॥ प्रक्षोभयति पान्थः स्त्रीनिःशासौरिव मांसलः ॥ १ ॥  
 सुभग तवाननपङ्गजदर्शनसंजातनिर्भरप्रीतेः ॥ २ ॥ शमयति कुर्व-  
 न्दिवसः पुण्यवतः कस्य रमणीयः ॥ २ ॥ इह क्रमेण सरः शब्दे-  
 ति गुप्तं कर्म । अयतिर्विवक्षावशतः परस्मैपद्यप्यस्ति, उदयति  
 यदि भावुरित्यादिप्रयोगात् ॥ पूतिपंकमयेऽत्यर्थं कासारे दुःखि-  
 ता अमी ॥ दुर्वारा मानसं हंसा गमिष्यति घनागमे ॥ १ ॥ अहं  
 महानसा यातः कलिपतो नृकरस्तव ॥ मया मांसादिकं भुक्तं  
 जानीहि मां वक ॥ २ ॥ अत्र क्रमेण दुर्वारा दुष्टांदुना महा-



वटवृक्षो महानन्द मार्गमावृत्य तिष्ठति ॥ तावत्त्वया न गंतव्य  
 यावन्मार्गे स तिष्ठति ॥ इहापि क्रमेणाऽले वटो इति संबुद्धिर्णु  
 कर्ता च गुप्तोऽस्ति ॥ २ ॥ रामनाम सुधाधाम पवित्रं रस ना रसम् ॥ ३ ॥  
 कर्ता कर्म किञ्चात्र के च संवोधनक्रिये ॥ इह हे नः त्वं रामनाम र  
 आस्वादय । किभूतं सुधाधामाभृतस्यानं पुनः पवित्रं रसरूपवृ  
 अत्र कर्तृकर्मसंबुद्धिक्रियाश्च गुप्ताः ॥ विपादी भेद्यमश्राति सदा  
 रोगं न मुचति ॥ कुद्देनापि त्वया वीरज्ञभुनारिः समः कृष्ण  
 ॥ १ ॥ इह विपादश्वेतसो भंगः सोऽस्यास्तीति विपादी विपा-  
 तीति वा सदारोगं शश्वद्व्याधिं सभार्थः अग्नं हिमाद्रिम् इ-  
 विपादी सदारहिति च समासयोर्गुप्तिः ॥ नित्यमाराधिता देवैः कंस-  
 स्य द्विपतस्तत्रुः ॥ मंडलाग्रं गदां शंखं चक्रं जयति विप्र-  
 ॥ २ ॥ इहापि नित्यं मा श्रीर्यस्यांसेति समासो गुप्तः मंडल-  
 ग्रं कौशियकं सङ्घमिति यादवः । इतिसमासगुप्तम् ॥ नितांत-  
 स्वच्छहृदयं सखिप्रेयान्समागतः ॥ त्वां चिरादर्शनप्रीत्य-  
 यः समालिङ्गयरस्यते ॥ १ ॥ इह स्वच्छहृदयमिति विशेषण-  
 क्रियात्रांत्याऽयमिति पुँछिङ्गमस्पष्टम् ॥ कलिकालमियं तावदग-  
 स्त्यस्य मुनेरपि ॥ मानसं खंडयत्यत्र शशिखंडानुकारिणी ॥ २ ॥  
 इयं लोपामुद्रा वक्रशीलतयालहादकतया च शशिखंडानुकारिणी  
 अगस्त्यस्यापि मुनेश्वेतःकलिना प्रणयकलहेन कालं मलिनता-  
 मापन्नं खंडयति तथाऽगस्त्यस्य तरोरियं कलिका मुकुलं शशि-  
 खंडवत्कुटिला मुनेरपि मनःखंडयत्युद्दीपनविभावत्वाद् ।  
 अत्र कलिकेति स्त्रीलिंगं गूढम् ॥ इति लिंगगुप्तम् ॥ प्रमोद-  
 जनयत्येव सदारागृहमेधिनः ॥ यदि धर्मश्च कामश्च भवेत्ता संग-  
 ताविमो ॥ ३ ॥ इह रा इति सुवचनं गुप्तम् ॥ कस्मात्त्वं दुर्बलासी-  
 ति सख्यस्तां परिपृच्छति ॥ त्वयि सात्रिहिते तासु दद्यात्किं शुथयोत



ग्रहपसाम्याद्विग्योः श्रेष्ठः । एकवचनद्विवचनयोः शब्दसाम्यवचन-  
श्रेष्ठोऽपीत्यर्थः ॥३॥ अथ प्राकृतसंस्कृतभाषयोः श्रेष्ठमाह । महदेसुरसं  
धम्मेतमवसमासंगमागमाहरणे ॥ हरवहुसरणं तंचित्तमोहमवसर उभे  
सहसा ॥ ४ ॥ महां दद् स्वरसं धर्मं तमोवशामाशांगमागमात्संसार  
रूपात् हर नः हे हरवहुशरणं त्वं चित्तमोहोऽपसर्तु सहसा मे इति  
प्राकृतेऽर्थः । संस्कृते तु महदे उत्सवदात्रि उमे मे आगमाहरणे  
वेदोपादाने तं सुरसंधं देवेषु संधानं भक्तिमवरक्ष समासंगमासक्ति  
हर अपनय वहु सरणं प्रसरणं यस्य तं चित्तमोहमवसरे समये उमे  
सहसा हरेत्यावृत्या योज्यम् ॥ ५ ॥ प्रकृतिश्रेष्ठमाह । अयं सर्वाणि  
शास्त्राणि हृदि ज्ञेषु च वक्ष्यति ॥ सामर्थ्यकृदमित्राणां मित्राणां  
च नृपात्मजः ॥ ६ ॥ अयं सर्वाणि शास्त्राणि हृदि वहिष्यति श्रेष्ठ  
विज्ञेषु जनेषु वादिष्यति । वहिवच्योर्लेटि वक्ष्यतीति समं रूपम् ।  
अमित्राणां सामर्थ्यं कृततीति मित्राणां सामर्थ्यं करतीति ।  
कृततिकरतेत्योः किप् । तेन प्रकृत्योः श्रेष्ठः ॥७॥ प्रत्ययश्रेष्ठमाह ।  
रजनिरमणं मौलेः पादपद्मावलोकक्षणसमयपरात्पूर्वसंपत्सहस्रम् ॥  
प्रमथनिवहमध्ये जातुचित्तप्रसादादहमुचितरुचिः स्याद्विन्दि-  
ता सा तथा मे ॥ ८ ॥ चंद्रमौलेः पादपद्मावलोकक्षण उत्सवस्तु-  
त्समये परात्पं प्राप्तं यदपूर्वमगोचरं संपदा सहस्रं यत्र तद्यथा  
स्यात्तथाहं जातुचित्तकदाचित्तस्य चंद्रमौलेः प्रसादात् प्रमथास्य-  
गणमध्ये उचिता योग्या रुचिः प्रीतिर्दीप्तिर्वा यस्य ताहशो नंदिता-  
नंदकर्ता स्यां भवेयं तथा सति सा नंदिता नंदिनो गणस्य भावो  
नंदिता मे मम स्यादित्यर्थः । अत्र स्यां स्यादित्युत्तमप्रथमपु-  
रुपयोर्नंदितेति तृच्तलोः प्रत्यययोश्च श्रेष्ठः ॥९॥ ८ ॥ अथ सुतिविद्-  
भक्तयोः श्रेष्ठमाह । सर्वस्वं हर सर्वस्य त्वं भवच्छेदुतत्परः ॥ नयो  
॥ १० ॥ नितनुवर्त्तनम् ॥ ११ ॥ भो हर त्वं सर्वस्य सर्वस्वं



सा च पीढा च्युताक्षरा ॥ दत्ताक्षरोभयाक्षराश्च मुष्टिविन्दुमत्यथं वती-  
 भेदात् ॥ सुशीलः स्वर्णगोराभः स्वर्णचंद्रनिभाननः ॥ सुगतः कस्य न  
 प्रीतिं तनोति हृदि संस्थितः ॥ १ ॥ इह सुगतम् इत्यत्र मध्ये  
 गकारभ्रंशात्सुत इति सिद्ध्यति इति च्युताक्षरा । इहाक्षराद्देव  
 मात्राविसर्गविन्दुव्यंजनान्यपि ग्राह्याणि ॥ अन्योप्यथः स्फुटे  
 यत्र मात्रादिच्युतकेष्वपि ॥ प्रतीयते विदुस्तज्जास्तन्मात्राच्युत-  
 कादिकम् ॥ १ ॥ महाशयमतिस्वच्छं नीरं संतापशांतये ॥  
 सलावासादतिथ्रान्ताः समाथ्रयत हे जनाः ॥ १ ॥ अत्र नकार-  
 स्येकारमात्रायाच्यावने नरोऽपि भवति । तथा च नरनीरयोः  
 कर्मणोः समाथ्रयतेति क्रिययान्वयः । महान् आशयवित्तमाथ्रयो  
 वा यस्य तम् । अतिस्वच्छमकुटिलं निर्मलं च । संतापः आपिर्वा-  
 धिश्च । सलो दुर्जनो धान्यमर्दनभूत्य ॥ तुपारथवलः स्फूर्जन्महा-  
 मणिधरोनवः ॥ नागराजो जयत्येकः पृथिवीधरणशमः ॥ २ ॥  
 इह नकारे आकारच्यावनान्नगराजो हिमाद्रिनांगराजः शेषः ॥  
 इह यद्यपि । धूमे शंखे मणो मांसे नैले भोज्ये गृहे पथि । गुरुमन्त्र-  
 नवैद्येषु संज्ञायां त्राक्षणे तथा ॥ अश्वीलाथांभिधायित्वान्महच्छन्दं त  
 दापयेदिति वचनान्महामणिशब्दो लज्जाकरस्तथापि क्रीडाकाव्येषु  
 न दीपो महामणिषु जातं मन्थसे त्वं महत्वमित्यादिप्रयोग-  
 दर्शनात् ॥ मात्राच्युतकमिति । सुश्यामा चंदनवती कांता तिल-  
 कभूपिता ॥ कस्यैपानंगभूः प्रीतिं भुजंगस्य करोति न ॥ १ ॥  
 अत्रानंगभूरित्यत्र विदुच्युत्या नगभूर्भवति सा चौचित्यान्मलयाद्रे-  
 ज्ञेया ॥ सुष्टुश्यामलाङ्गातरजाश्चाचंदनद्वुमवती चंदनांगरागवती च ।  
 कांता कमनीया वल्लभा च । तिलकैर्वृक्षैः पुण्ड्रेण च भूपिता । भुजंग-  
 - पे विटश्च ॥ काले तडिछत्ताजाले वनपीनपयोधरे ॥ कांतः सर्वगुणो-  
 ऽवालेदुःखे न लभ्यते ॥ १ ॥ इहापि वालेदुरिह विदुच्युतौ हे वलि







स्य भेदलक्षणं कृतं दिनात्रयुदाद्वियते । अथास्य व्याख्या ।  
 अर्थं सतीति । अथंभिन्नानां भिन्नायांनां वाहिताग्न्यादिपिति पूर्वं  
 निषातः । तेनेकार्थं लाटानुप्रसेन प्रसंगः । एवं त्वर्थग्न्यानां पुनः  
 श्रुतो यमकं न स्यादत आह । अर्थं सतीति । सा भिन्नक्रमा कं  
 णानां पुनःश्रुतियंभकमित्यर्थः । अत्र वर्णयमकभेदेऽपि श्रुतिसा-  
 म्ये यमकं भवत्येव । यथा मावे । भुजलतां जडतामधलाजन इति  
 डलयोः साम्ये ॥ तदुक्तं डलयोरलयोर्थेव डरयोत्र समा श्रुतिरिति ।  
 नन्यथें सतीति व्यर्थमत आह । समरेति । समरे युद्धे समो  
 रसो यस्य सः । अत्र द्वितीयसमरपदेऽर्थाभावात्र यमकं स्यादतोर्यें  
 सत्युक्तम् । मूले सेति पदं व्यर्थमत आह । तेन तुल्यार्थग्न्यानेकं  
 वर्णपुनःश्रुतिर्यमकं तत्र भिन्नार्थत्वेऽर्थाभावे च तुल्यं विशिष्टा-  
 भावस्य द्वेधासंभवादिति तत्त्वम् ॥ मूले सेति पदं व्यर्थमत आह ।  
 सर इति । सरसस्तडागस्य रस इत्यत्र वर्णभेदेऽपि क्रमभेदात्र य-  
 मकमित्यर्थः । अस्य विशिष्टिभेदानाह । पादे यमकं द्वेधा पादवृत्ति-  
 स्तद्वागवृत्तिश्च । आद्यमेकादशाधा प्रथमः पादो द्वितीयादौ द्वितीये  
 तृतीये चतुर्थे च विकल्पेन यम्यत इत्यग्रेतनेन संवंधः । एवं  
 साम्ये मुखम् १ संदेहः २ आवृत्तिश्चेति त्रयो भेदाः । द्वितीयः पा-  
 दस्तृतीये चतुर्थे च सम इति गर्भसंदेशौ द्वौ तृतीयश्चतुर्थे इत्येक-  
 पुच्छास्त्र्यः प्रथमः पादस्त्रिप्पापि सम इति पंत्तयाख्यः । यथा ।  
 विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा इति । अत्र मुखयोगे युग्मकम् । गर्भ-  
 वृत्तयोर्योगे परिवृत्तिः । अर्द्धावृत्तिः समुद्रकं शोकावृत्तिर्महायमक-  
 मेवं सप्तभेदाः । पादयमकस्येत्यर्थः प्रथम । इति । आद्ययोरत्ययो-  
 श्च पादयोः साम्ये एकः । आद्यंतयोर्द्वितीयतृतीययोश्च साम्येऽन्य-  
 इति द्वौ तेन नव भेदाः । पादयमके इत्यर्थः । अर्द्धशोकयोः पादरू-  
 पत्वात्पादावृत्तावंतर्भावः । तद्वागेतिं मूलं व्याचष्टे । द्विधेति । श्वी-



हिमव्याप्तिविश्वा वेधा न वेद याम् ॥ या च मातेव भजते प्रणते-  
 मानवे दयाम् ॥ यदानतोऽयदानतो न योत्ययं नयात्ययम् ॥ शिवेहि  
 तां शिवे हितां स्मरामितां स्मरामि ताम् ॥ समुच्चययमकम् । सर  
 स्वति प्रसादं मे स्थिर्तिं चित्तसरस्वति ॥ सरस्वति कुरु क्षेत्रं कुरु  
 वंसरस्वति ॥ ससार साकं दपेणकं दपेण ससारसा ॥ शरन्नवानां  
 आणा नाविभ्राणा शरन्नवा ॥ मधुपराजिपराजितमानिनजिनमन  
 सुमनःसुरभिश्रियम् । अमृतवारिजवारिजविष्वर्वं स्फुटितताप्रतत  
 ग्रवणं जगत् ॥ एवं वैचित्र्यसहस्रैः स्थितमन्यदुन्नेयम् ॥ अथ व्याख्या  
 आद्यतृतीयपादसाम्ये आह । सन्नारीति । सन्ना नष्टा अरीणामि  
 गजा यत्रेवशो रणे यस्य स त्वं सतीर्नारीर्विभर्ति पुण्णाति योः  
 गौरी तां याति यस्तं विद्वुशेखरं शिवम् । अमायमकपटं य  
 तथाराध्य ततो हेतोः पृथिवीं जयेत्यर्थः । पादावृत्तो युग्मव  
 माह । विनेति । यमरूपेण विना पक्षिणाऽयं महाजनः सज्जन  
 नोऽपराधं विना यतमानानां प्रयत्नवतामपि सादं दुःखं राति दद  
 तीति सादरं यथा तथा । यद्वा । यतो दीर्घो मानो येषां तेषु साद  
 यथातथा । मानसाच्चित्तात्सरसश्चारमन्त्यर्थमदीयत असंब्रूत अम  
 र्यतेत्यर्थः । कीदृशेन यमेन नयता स्वस्थानं प्रापयताऽसून्नाण  
 न्खादतीति खादी तेन । ऊनयता हानिं कुर्वता सुखादि ऊनयत  
 नाशयता अयन्ना पुमान् असंब्रूतेति संवंधः । महमुत्सवमर्जि  
 क्षिपताति महाजः खलस्तं नुदतीति महाजनो ना पुरुषः  
 यद्वाऽयं शुभविधिं विना एनः पापं नयता जनयता महा-  
 तमजं छागं नुदाति ददातीति नोदी ‘महोक्षं वा महाजं वा श्रोत्रिया  
 योपकल्पयेत्’ इत्युक्तेः ॥ श्रोकावृत्तिमाह । स त्वेति ॥ स तु भरत  
 । नाऽन्वर्यं निश्चितमवलंवितमाश्रितं तारवं तरुसमूहो येन तदार  
 ॥ दूरं सर्वदाऽनिशं रणमानेपीद । अलसं यथाऽवान् न च श्वसन्



पानां राज्या पंत्तया पराजितं मानिनीजन्मनो याभिस्ताः सुमनस  
 पुष्पाणि यत्र । स्त्रियः सुमनसः पुष्पमित्यमरः । स चासौ सुरभिर्व  
 संतस्तस्य त्रियम् । यद्वा तासां सुमनसां पुष्पाणां सुरभिः सुगन्ध-  
 स्तस्य लक्ष्मीमभूत दधार । वारिजानि पद्मानि वारीणि च तजो  
 विपुवो विहृलता यत्र । यद्वा वीनां पक्षिणां पुवो गतिर्यत्र स्फुटिर्व  
 विकसितं ताम्रं रक्तं ततं विस्तृतमात्रवणं यत्र तत्थेति । विशे-  
 पतो यमकोदाहरणानि तु नलोदयकाव्ये कालिदासेन प्रदर्शितान्य-  
 पेक्षा चेत्तत्र द्रष्टव्यानीत्युपरम्यत इति शब्दालंकारादिगदर्शनम् ॥  
 अथार्थालंकारान्विभजते ॥ उपमा रूपकोत्प्रेक्षा समासोक्तिरपहुतिः ॥  
 समाहितं स्वभावश्च विरोधः, सारदीपकौ ॥ सहोक्तिरन्यदेशतं  
 विशेषोक्तिविभावने । एवं स्युरथालंकाराश्रुदर्शन चापरे ॥ अन्याः  
 सर्वालंकृतय एष्वेवांतर्भवंति हीति । तत्र भेदे सति साधम्यमुपमा  
 अधिकगुणवत्तया संभाव्यमानमुपमानं निकृष्टगुणवत्तया संभाव्य-  
 मानमुपमेयम् । ता विभजते ॥ वाक्यार्थातिशयश्चेपनिन्दाऽभूता-  
 पर्ययाः । संशयो नियमः स्वश्च विक्रियेत्युपमा दश ॥ तत्र वाक्य-  
 थेनैव वाक्यार्थो यत्रोपमीयते सा वाक्यार्थोपमा । सा च द्वा-  
 प्रत्येकसादृश्यानपेक्षा तत्सापेक्षा च । आद्या यथा । कामिनीना-  
 नक्नलपंकादुत्थितो मदनमत्तवराहः । कामिमानसवनांतरचा-  
 कंदमुत्सनति मानलत्तायाः ॥ अत्रोपमानस्य वराहादेर्मत्तवादमूर्त्त-  
 दनादिभिरुपमेयरसादृश्यत्वेन न्यूनत्वात् ॥ यथा । त्वदाननमर्थाराह-  
 माविदंशनदीयिति ॥ ऋमद्गमिवालक्ष्य केशरं भाति पङ्कजम् ॥ २  
 इहोपमेयस्याननस्योपमानेन पंकजेन प्रत्येकं सादृश्यात् ॥ यत्तदि-  
 शययमोपन्यासः साऽतिशयोपमा । यथा । कल्पद्रुमो न जानाति  
 न ददाति वृद्धस्पतिः ॥ अयं च जगतीजानिर्जनाति च ददाति  
 च ॥ पद्मेषेपनिवंयनसाम्यः शेषोपमा यथा । तमालपत्राभर्त्य



यथा । आपूर्णितं पद्मलमसियुगमं प्रांतद्युतिर्थत्यजितामृतांशुः ॥ अस्या इवास्याश्वलदिन्द्रनीलगोलामलश्यामलतारतारम् ॥ अभेदात् मानवदिह भेदो द्रष्टव्यः ॥ यत्रोपमेयमुपमानविकारतयोच्यते सा वि- क्रियोपमा । यथा । हरिणादय तन्नयनादय पद्मात्पद्मपत्राच्च ॥ आहृत्य कांतिसारं विभिरसृजत्सुधुवो हृषिम् ॥ श्रीपादस्तु समभिव्याहारोऽपमाप्यस्तीत्याह । सा यथा । प्रकृत्येव मनोहारि वदनं हरिणीदशः ॥ चन्द्रे हादकता कस्मात्पद्मः केन परिष्कृतः ॥ अत्र सर्वत्र न्यूनाधिकत्वं शंका चेद्विभागेषु तदिप्यताम् ॥ किंचिद्विशेषमादाय भेदोभेदश्च क- श्वन् ॥ कान्चित्समस्तान्वयिनी क्रियामात्रान्वयापरा ॥ विशेषणान्व- या काचिदुपमाकापि तत्परा ॥ अत्र च । न्यूनता साम्यमाधिक्यं उ- द्यदेवाभिधीयते ॥ अहो वाक्यस्य माहात्म्यं समतैव प्रतीयते ॥ तदाह राजशेषरः । समानमाधिकं न्यूनं सजातीयं विरोधि च ॥ सकुल्यं सो- दरं कुल्यमित्याद्याः साम्यवाचकाः ॥ अलंकारशिरोरत्नं सर्वत्वं काव्यसंपदाम् ॥ उपमा कविवंशस्य मातैवेति मतिर्मम ॥ इत्युपमा ॥ अतिसाम्यादपहुतभेदयोरुपमानोपमेययोरभेदप्रत्ययो रूपकम् ॥ यदाहतद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोरिति ॥ दंडी चाउपमैव तिरो- भूतभेदा रूपकमिष्यते ॥ इति ॥ तद्विभजते ॥ विरुद्धश्च समस्तं च व्यस्त- रूपकरूपकम् ॥ श्विष्टश्च रूपकं तस्मात्संक्षेपात्पञ्चधा स्मृतम् ॥ तत्रो- पमानविरुद्धोर्थस्तद्विरुद्धम् । यथा । दिवा न परिभूयते न च मनागपि क्षीयते न वा चरमवारिधेः पयसि लुतिमार्विंदति । न च त्रिदशः सुभुवां वदनकांतिभिर्जीयते यशस्तुहिनदीधितिर्जयति कोपि भूमी- पतेः ॥ अत्रोपमानश्वन्द्र उपमेयं यशस्तच्च चंद्राद्विरुद्धत्वेन वर्ण- तम् ॥ समस्तं यथा । तस्या वाहुलता पाणिपद्मं चरणपद्मवम् ॥ उदुक्षित्रं सर्वस्वं पुष्पधन्वनः ॥ अत्र वाहुरेव लता वाहु- ॥ पदानि समस्तानि ॥ व्यस्तं यथा । भुजौ मृणाले



इत्युत्प्रेक्षा ॥ अन्यदभिप्रेत्यान्याभिधानं समाप्तोऽक्षिः सैव चान्या-  
पदेश उच्यते यथा । त्वं पीयूपदिवोपि भूपणमसि द्राक्षे परीक्षेत को  
माधुर्यं तव विश्वतोपि विदिता माध्वीकसाध्वी कथा ॥ एतत्किंतु  
तवाप्यरुदमिव व्रूपो न चेत्कृप्यसे यः कांताधरपल्लवे माधुरिमा  
नान्यत्र कुत्रापि सः ॥ इह कान्ताधराभिप्रायेणामृतादिकथनात्समा-  
सोक्षिः ॥ किञ्चिदपहृत्य यदन्यार्थप्रदर्शनं सापहृतिः ॥ यथा शी-  
त्कारं शिक्षयति ब्रणयत्यधरं तनोति रोमाञ्चम् ॥ नागरिकः किमु  
मिलितो नहि नहि सखि हैमनः पवनः ॥ अत्र नागरिकमपहृत्य हैमन-  
पवनप्रदर्शनादपहृतिः ॥ आरब्धानुकूलाकस्मिकसहकारिलभः  
समाहितम् ॥ मानापनोदनविधौ मदिरेक्षणाया यावन्नमामि चरण-  
वथ तावदेव । नीपस्खलन्नवसमीरपुरस्सराणि प्रादुर्वभूरुरचिराद्  
गर्जितानि ॥ सुरभिवातवनगर्जनादेरुदीपनविभावत्वेन सहकारित-  
न समाहितत्वमवैति ॥ यस्य वस्तुनो यत्स्वभावता तदाख्य  
स्वभावः स एव जातिरुच्यते यथा । चलति कथांचित्पृष्ठा यच्च  
वाचं कथांचिदालीनाम् ॥ आसितुमेव हि मनुते गुरुगर्भभरालसा-  
तनुः ॥ स्पष्टार्थः ॥ विरोधो द्विविधः तत्राद्यः पारमार्थिकाविरो-  
प्योचित्येन विरोधिता प्रतीयते यत्र सः यथा । मनीषिताः सन्ति ।  
हेषु देव इत्यादौ । द्वितीयस्तु यथा । श्रुते विरोधसंधानेषि यत्र  
भिप्रेतमासाध्याविरोधः अयमेव विरोधाभास उच्यते । यथा  
भक्तानां कामदो यस्तु रूपा कामं दहन्नपि ॥ अपिज्ञान  
मयःस्थाणुर्यस्तमीशं स्तुवीमाहि ॥ स्पष्टम् ॥ उत्तरोत्तरं य  
त्र सारोत्कर्पः स सारः । यथा । विषयेषु तावदवलास्तास्वपि गोप्य  
स्वभावमृदुवाचः । मध्ये तासामपि सा तस्या अपि साचि वीक्षि-  
मपि ॥ सा राधा ॥ समस्तवाक्योपकारकत्वं दीपकत्वम्  
भिन्नं च तत्त्वाक्यादिभेदादनन्तम् ॥ अभिन्न-



नगेषु रत्नाभरणानि संति निःश्वासहाय्याण्यपिनांशुकानि ॥ तथा  
सा संप्रति सारसाक्षी दिने दिने कामपि कान्तिमेति ॥ निःश्वास  
याण्यतीव मृदुसूक्ष्माणि । केचित्तु अन्यदेशत्वमेव विशेषोक्तं  
भावनेऽधिकरणद्वयमादाय । अन्ये तु अनयोरेकेनापरस्याऽन्य  
सिद्धिर्व्यतिरेकमादायेति । गोवर्धनस्त्वन्यथा सिद्धयाऽन्यदेशत्वमेव  
निराचकार । व्यतिरेकालंकारस्वतिरिच्यत इत्येके । स च यथा  
कादाचित्कीं द्युतिं धत्ते कलंकी क्षीयतेऽन्वहम् । दोपाकरः कथंका  
त्वदाननसमः प्रिये ॥ एकेनाप्रस्तुतस्य सिद्धिराक्षेपः । सोर्ज  
पृथगित्यपरे ॥ यथा । इन्द्रेण किं स यदि कर्णनरेद्दसुनुररावते  
किमसौ यदि तद्विपेन्द्रः । दंभोलिनाऽप्यलमयं यदि तत्प्रताप  
स्वगेष्ययं ननु मुधा यदि तत्पुरीयम् ॥ आनन्त्यादेवालंकाराणामिह  
दिद्व्यमात्रमेवादर्शिः । विशेषोपेक्षा त्वलंकारसर्वस्वादिपरिशीलनत एव  
शाम्यतीति ॥ अथालंकारिकाभिमतव्यंजनावृत्तिर्हि तार्किका-  
दिभिर्नाङ्गीक्रियतेऽधुनाकाव्यप्रकाशोक्तवत्तर्मना तां साधयामः ॥  
गतोस्तमर्कं इत्यादौ नानार्थप्रतीतिसिद्धिर्हि व्यंजनामंतरा न संभ-  
वतीति वदन्तं प्रत्याह । रामोऽस्मि सर्वेसह इह दुःखसहिष्णुत्वम् ।  
रामेण प्रियजीवितेन तु कृते प्रेम्णः प्रियेनोचितमिह निःस्मैहत्वम् ।  
रामोसौ भुवनेषु विक्रमगुणैः प्राप्तः प्रसिद्धि परामित्यत्रोक्ताए-  
त्वं च । तेन लक्षणीयार्थोपि नानात्वं भजते विशेषव्यपदेशहेतुश्च  
भवति । तदवगमश्च शब्दार्थायतः प्रकरणादिसव्यपेक्षव्येति कोर्यं  
नृतनः प्रतीयमानो नाम । अस्यार्थः । विशेषव्यपदेशोर्थातरसंक्षि-  
तवाच्यत्वादिस्तद्वेतुस्तद्विप्रयस्तदवगमो लक्षणावगमः लक्षणायाः  
शब्दवृत्तित्वातदायत्तत्वं शक्यसम्बन्धापेक्षणाच्चार्थायत्तत्वम् । प्रक-  
ृति । तस्यैव तात्पर्यशाहकत्वात्तात्पर्यानुपपत्तेश्च लक्षणाम्  
र्थः । तत्त्वो त्यंस्यवान्त्यगतिभ्यैर्भास्यामिदिस्तव-



व्यपेक्षालक्षणाऽत एवाभिधा पुच्छमित्याहुः । न च लक्षणात्मक-  
 मेव ध्वननं तदनुगमनेन तस्य दर्शनात् । न च तदनुगतमेव  
 अभिधावलंबनेनापि तस्यभावात् । न चोभयानुसार्येव अवाचक-  
 वर्णानुसारेणापि तस्य दृष्टेः । न च शब्दानुसार्येव अशब्दात्मकनेत्र-  
 विभागावलोकनादिगतत्वेनापि तस्य प्रसिद्धेरित्यभिधातात्पर्यम् ।  
 लक्षणात्मकव्यापारानुवर्ती ध्वननादिपर्यायो व्यापारो नापहवनीय  
 एव ॥ व्याख्या । किञ्चाभिधावलक्षणापि संकेतापेक्षा । न च व्यंग्ये  
 तदस्तीत्याह । यथा चेति । समयः संकेतः । यद्यपि तद्वप्त्वाद-  
 भिधानतत्सापेक्षा तथापि संवंधाभिप्रायः समयशब्दः । यद्वाभि-  
 धानजन्यं ज्ञानं संकेतापेक्षा ज्ञानापेक्षेत्यर्थः । मुख्यार्थवाधस्तद्योगः  
 प्रयोजनं चेति त्रयमित्यर्थः । ननु तद्विभिधातो भेदो न स्यादत  
 आह । अत एवोति । यतः संकेतापेक्षाऽतस्तत्सापेक्षा च लक्षण-  
 शक्यसंवंधात्तस्याः । अतः परम्परया लक्षणापि संकेतापेक्षेत्य-  
 भिधा तत्पुच्छभूतेत्यर्थः । लक्षणाव्यञ्जनयोर्भेदकांतरमाह । न चोति ॥  
 तस्य ध्वननस्य असिद्धिं निरस्यति । नचेति ॥ अभिधेति । ना-  
 नार्थव्यञ्जनाया भद्रात्मन इत्यादावित्यर्थः । उभयं लक्षणाभिधा ।  
 अवाचकेति । अवोधकवर्णा गतोस्तमर्कं इत्यादावित्यर्थः ॥ वस्तु-  
 तस्तु एकैकदूषणेनैवोभयदूषणाद्रसादेरपूर्वत्वेन तत्र शक्तिश्वभा-  
 वाच्छक्यसंवंधाग्रहणाचेतिं । तत्त्वं नेत्रविभागः कटाक्षः । आदिप-  
 दादभिनयादितात्पर्यं वाक्यस्य तदर्थे ॥ मूलम् । तत्र च अत्तारात्ये-  
 त्यादौ नियतसंवंधः । कस्सवणेत्यादावनियतसंवंधः । विपरीयरए  
 लच्छीं वंहड दूण णाहिकमलत्यं । हरिणो दाहिणणं रसाउला  
 जाति ढकेई ॥ इत्यादौ संवंधसंवद्धः । अत्र हि हरिपदेन दक्षिणनयन-  
 सुर्यात्मता व्यज्यते । तत्रिमीठने सुर्यास्तमयस्तेन पद्मसंको-  
 नं तेन च ब्रह्मणः स्थगनं तत्र च सति गोप्यांगस्यादर्शनेऽनियंत्रण



ति व्याप्तत्वेन नियतधर्मनिष्ठत्वेन च त्रिरूपांल्लगांश्चिगजानमनुमा-  
 नं यत्तद्वूपः पर्यवस्थ्यति ॥ तथाहि । भमधम्मभवीसत्यो सो सुणहो  
 अज्ज ओमाईदेण गोलाणईकत्थकुंडंगवासिणा दरीयसीहेण ॥ अत्र  
 गृहे शनिवृत्त्या भ्रमणं विहितं गोदावरीतीरे सिंहोपलव्येरभ्रमणमनु-  
 मापयति ॥ व्याख्यासंवन्धसामान्येऽप्यतिप्रसंगस्तुल्योऽत आहा ॥ प्रति-  
 वं धेति ॥ प्रतिवंधो व्याप्तिः ॥ पक्षधर्मतामाह ॥ द्वंद्वान्ते श्रुतस्य त्वशब्दस्य  
 प्रत्येकमन्वयः ॥ नियतत्वेन धार्मनिष्ठत्वेन चेत्यर्थः ॥ विपक्षासत्त्वेन  
 सपक्षसत्त्वेन चेत्यर्थः ॥ अत एवोक्तं त्रिरूपादिति ॥ पक्षसत्त्वसपक्षस-  
 त्वविपक्षासत्त्वधर्मत्रययुतादित्यर्थः ॥ अवाधितत्वस्य सर्वप्रमाण-  
 साधारण्यादसत्प्रतिपक्षत्वस्य स्वार्थानुमानेऽनुमानाच्च नाभिधान-  
 म् । अत्रानुमानपदं भावव्युत्पत्त्यानुमितिपरं तद्वूप इति । अनुमि-  
 त्यात्मको व्यंग्यव्यंजकभाव इति पूर्वेणान्वयः ॥ भमधम्मीति ।  
 भ्रमणधार्मिकार्विश्वस्तः स शा अद्य मारितस्तेन गोदानदीकच्छ-  
 कुंजवासिना दृतांसिहेन पुष्पावचयार्थं स्वसंकेतस्थलं गोदानिकुंजं  
 गच्छतं विभकारिणं प्रति कस्याश्चिदियमुक्तिः । गोदातीरे सिंहो-  
 पलक्षितभयहेतोः सत्त्वाद्वृह एव तिष्ठ मागा इति तात्पर्यार्थः । अनु-  
 मानप्रकारमानः । अत्रेति । गृहे भ्रमणमभ्रमणमनुमापयतीत्यन्व-  
 यः । यद्यपि गृहे भ्रमणं गोदातीरे न भ्रमणाभावमनुमातुमीषे व्य-  
 धिकरणत्वात्तथापि व्याप्तिश्चोपयिकत्वेनेदमुक्तं शनिवृत्त्या गृहे  
 विहितं भ्रमणं तद्देतुकं कल्पते तेनैवं व्याप्तिः । यद्यद्वीरुभ्रमणं तत्त-  
 द्रयकारणाभावज्ञानपूर्वकमिति । गोदेति । अत्र हेतुः सिंहोपलव्ये  
 इति । एवं च प्रयोगः । गोदातीरं भीरुभ्रमणयोग्यं भयकारणवत्वा-  
 त्तिसिंहादिमत्वाद्वा यन्नैवं तन्नैवं यथा गृहमिति भ्रमणाभावानुमि-  
 तिः ॥ मूलम् ॥ यद्यद्वीरुभ्रमणं तत्तद्रयकारणनिवृत्युपलव्यपूर्व-  
 गोदातीरे सिंहोपलव्येरिति व्यापकविरुद्धोपलव्यः ।



स्थलांतरेऽपि व्यभिचारादनुमानं निरस्यति। तथेति॥ कारणं संभोग-  
 भिन्नं स्नानादि तस्मादित्यर्थः। प्रतिवद्धानि व्याप्तानि तर्हि व्यभिचारे-  
 व्यंजनापि कथं तत्राह । व्यक्तीति ॥ व्यक्तिव्यंजनां । अस्तु ममा-  
 प्यधमपदसहकरेणानुमानमत आह । न चेति ॥ ततश्च पूर्ववत्स-  
 वित्सिद्धिरिति भावः। ननु व्यंजनापक्षेऽप्येष दोषोऽत आह। एवमिति।  
 तत्र व्याप्तेरनंगत्वेन संभावनामात्रादेव तत्प्रतीतेन चातिप्रसंगः।  
 वक्त्रादिवैशिष्ट्यस्य नियामकत्वात् । यस्त्वर्थसंदेहे व्यंग्यधर्तीति  
 तत्स्ववासनया प्रतीतिकल्हे एव विश्राम्यर्तीति तत्त्वमिति व्यंज-  
 नावृत्तिसाधनम् ॥ अथ संक्षेपतो वक्ष्ये समस्यापूरणे विधिम् ।  
 अत्रादौ विशदाः पञ्च प्रोच्यन्ते कारिका यथा ॥ कल्पादिसिंधुल-  
 भुभिर्गुरुता युगान्तदूरावलोकगुरुभिर्लघुता विधेया । विष्णोरधो-  
 मुखतया प्रतिविवतश्च स्यादैपरीत्यमुदकादिपु जन्मता च ॥ अय-  
 मर्थः । कल्पस्यादिः कल्पादिः सृष्टिसमयः । सिंधुः समुद्रः । लघुः  
 क्षुद्रपदार्थः । एतैर्हेतुभूतैर्वस्तुनो गुरुता विधेया कल्पनीया ।  
 सृष्टौ हि स्मृप्ता महावयवानेव निर्मिमीते स्म पदार्थान् । कालकं  
 मेण सर्वे दुर्बला अभूवन् । सामुद्रिकद्रव्येषु शाश्वतिक-  
 एवातिरेकः । लघ्वपेक्षया ततोऽधिकस्यापि महिमा नियो-  
 ज्यः । युगान्तादिहेतुभिर्लघुता कल्पनीया । युगान्तसमये हि  
 सर्वे लघु भवति । दूरे दृश्यमानाः पदार्था अतिक्षोदीयांस इव  
 भासते । गुरुपेक्षयाऽप्येवमाकलनीयम् ॥ उदाहरणानि यथा ।  
 कल्पादिकाले गुरुदेहदेश्या पिषीलिका राजति शैलतुल्या । तदा  
 लघीयानापि गंडशैलः श्रीखंडशैलस्य तुलां तनोति॥ सिंधुना यथा ।  
 अहो पयोराशिनिवासियादौ पिषीलिका राजति शैलतुल्या । सदा  
 महतां हि संगो धत्ते लघूनामापि गौरवाणि॥ माहात्म्यं तस्य  
 एवं शक्यते कथम् । सर्विर्यव्र विभात्यंभः कीटिका



न्तर्जाताकंप्रतिविवतः । शंक्यते शब्दुकांताभिः किमुदेति रविद्वयम् ॥  
 चंद्रांधकाररविकीर्तिकुकीर्तिसंध्यारागाभिसंगकृतवर्णविपर्ययेण ।  
 दृष्टांतवद्यदिशब्दतया पुराणेर्वात्सल्यशोकमधुवातवियोगमादेः ॥  
 स्वप्रेष्ठजालकमतिप्रभचित्रमायामंत्रोपधीमणितपःपदभंगभावात् ।  
 शोर्यस्त्रवांछितमनोगतिपुण्यदेवप्रश्नोत्तरक्षयसमासाविभित्रसाव्याद् ।  
 श्रीहाटकेश्वरजगत्प्रलयव्रहास्तपाथोधिमंथसमयप्रतिविवभावेः संग्रा-  
 मलक्ष्यपुरचंदनशब्दपातैश्वंडीशपद्मगुरुताभिरथोपमानेः ॥ यदुर्वें-  
 भवति तत्प्रकटं पटीयानोचित्यचितितपदं परिहृष्य कुर्यात् ॥ पूर्वो-  
 क्तपद्यगदितैरुपदेशभावैरेतैरिति स्म कविकल्पलताकृदाह ॥  
 अथोदाहरणानि ॥ रक्तकृष्णादयो वर्णश्वेद्रेण श्वेताः क्रियते । य-  
 था । उल्लसच्छिन्ज्योतिर्द्युतिविद्योतितोऽभितः । कैलासशैलसंका-  
 शः कासते विध्यभूधरः ॥ जपापुण्यं जातिसमं सुवर्ण रजतप्रभम् ॥  
 सुधाकरकरस्पर्शाद्वाति चंदनवन्मसी ॥ अंधकारेण यथा । कैलासो  
 विध्यसंकाशः कर्पूरः कञ्जलप्रभः । जपा तापिच्छगुच्छश्रीस्तमसा  
 भाति लिम्पता ॥ कृष्णश्वेतादयो वर्ण वालोकेण प्रथमं रक्तास्तद-  
 नु पीताः क्रियन्ते । यथा । कञ्जलं कुंकुमच्छायं जातीपुण्यं जपा-  
 समम् । सुवर्णं पद्मरागथि प्रभाताकंप्रभावृतम् ॥ इत्यमन्यत्रापि  
 वर्णविपर्ययः कार्यः ॥ यदा पुनश्चंद्रादीनामेव वर्णविपर्ययश्चिकी-  
 पितस्तदा कीर्त्यादिभिरेव तेपामपि वर्णविपर्ययः कार्यः । स्वधु-  
 नीसलिलसंनिभस्फुरत्तावकीनघनकीर्तिमंडलैः । विस्तृतैस्त्रिजगति  
 क्षमापते शीतरश्मिरिव लक्ष्यते रविः ॥ अन्यवस्तूनां यथा । मे-  
 दिनीदयित तावकैर्यशः सञ्चयैरुपचितैः समंततः । क्षीरनीरनिधि-  
 सोमकोमलैर्जायते रजतकांतिकञ्जलम् ॥ हिमाद्रिसदृशो मेरुर्भाति  
 ते भुवनवये ॥ कुकीर्त्याय-  
 भवदीयविद्विपन्मेदिनोपतिकुकीर्तिपंक्तिभिः । प्रावृप्ते-



अहर्पतिमहः शुप्कात्सागराद्भुलिरुतिथता ॥ अतुच्छवत्सवात्सल्य-  
 पिच्छुलीभूतचेतसा ॥ जनन्या मन्यतेऽत्यर्थं व्याघ्रः सोम्यवपुः क्षमी।  
 शोकेन मधुनाघाते न वियोगे न भादने ॥ नवा समस्या पूर्यते  
 शोकादिभिर्व्याप्तचेता हि विपरीतमाचरति । शोकव्याप्तितचेता  
 वा आत्मानं मन्यते मृतम् । मद्यपा मदिरामेव गंगा वदति मानवः ।  
 शस्त्राघातयुतो भूमिमाकाशमिव मन्यते ॥ वियोगात्तो जनः स्था-  
 णुं मानुपत्वेन पश्यति । मत्तो नग्नोऽप्यनग्नमात्मानं मन्यते भृ-  
 शम् ॥ इति स्वप्रेऽघटमानमपि घटते भोज्याभिपेककलाकुश-  
 लस्वप्ने दृष्टमिदं त्वं विचारयेत्यादि कल्पनीयम् । इंदजाठेन मति-  
 भ्रमेण चित्रेण चाङ्गुतमपि भोज्यत्वकर ईदृग्वटपूर्णं चित्रं लिखेति  
 वाक्यं । रचनीयं माययापि विसद्गङ्गं भाव्यं मणिमंत्रमहौपधीनां च  
 प्रभावेण सर्वसाध्यं यस्मादर्चित्यो हि महिमा मणिमंत्रमहौपधीनां  
 तपसापि सर्वं साध्यते यतः । सर्वं हि तपसा साध्यं तपश्च दुरति-  
 क्रमम् । पदभगेन यथा ॥ मृगात्तिसहः पलायते ॥ मृगमत्तीति विशे-  
 पलाय मांसाय ते तव अर्थं मृगः समायातिमृगात्तिसहः पलाय  
 ततो वेगात्पलायस्व त्वरितस्त्वरितैः पदैः ॥ शौर्येण स्वेन वाञ्छिं  
 मनोगत्या पुण्येन दुर्घटमपि घटते देवप्रसादेनासाध्यमपि सा-  
 ते ॥ यथा ॥ निःश्रीकोऽपि विभो विभातसमये पश्यत्यवश्यं  
 मान्यस्ते पद्मसमानमाननमसौ स्यादिन्दिरामान्दिरम् । देवोळा  
 किमु स्तुमस्तव पदं यस्य प्रसादाज्जनो मूर्को जलपति संशृणो  
 वधिरः पंगुर्नीनृत्यते ॥ १ ॥ प्रश्रोत्तरेण यथा ॥ कस्तूरी जाए  
 कस्मात्को हंति करिणां कुलम् । किं कुर्यात्कातरो युद्धे मृगात्तिस-  
 पलायते ॥ समस्यायां यत्साध्यं पदं तत् क्षयसमासेन भिन्नं च  
 यते समासस्य क्षयः क्षयसमासस्तेन समासं निवर्त्य भिन्नं किं  
 इत्यर्थः ॥ यथा ॥ कर्पूरपूरच्छविवादविद्यासंवावदूकद्युतिशुर्गा



भिया वहु नोद्वाव्यते इत्यलम् ॥ अथ च नीतिशास्त्रमपि मन्वादि-  
भिः सूचितं कामंदकादिभिः प्रणीतं तत्संधिविग्रहादिभेदैरनेकधा ।  
संधिष्ठ विग्रहं चैव यानमासनमेव च । द्वैधीभावं संश्रयं च पद्मणां-  
श्चितयेत्सदेति श्रीमानवोक्तेः । तत्रोभयानुग्रहार्थं हस्त्यश्वरथहिरण्या-  
दिनिवंधनेनावाभ्यामन्योन्यस्योपकर्तव्यमिति नियमवंधः संधिः ।  
विग्रहं वैरम् । यानं शञ्चुं प्रति गमनम् । तदुपेक्षणमासनम् । स्वार्थसिद्धये  
स्ववलस्य द्विधाकरणं द्वैधीभावः । शञ्चुपीडितस्य प्रवलतराजां-  
तराश्रयणं संश्रयः । गुणानुपकारकान्सदा चिंतयेत् । यद्वन्णाश्रय-  
णे सत्यात्मन उपचयः परस्यापचयस्तं गुणमाश्रयेदिति भावः । ए-  
पां भेदास्तु श्रीमनुना सप्तमाध्याये प्रपञ्चितास्ते चात्र विस्तर-  
भिया नोक्ताः ॥ अथ लेशेन राजनीतिमपि वदामः ॥ धार्मिकं पालन-  
परं सम्यक्परपुरंजयम् ॥ राजानमभिमन्यते प्रजापतिमिव प्रजाः  
॥ १ ॥ पर्जन्य इव भूतानामाधारः पृथिवीपातिः ॥ विकलेऽपीह प-  
र्जन्ये जीव्यते न तु भूपतौ ॥ २ ॥ प्रजां संरक्षति नृपः सावर्द्धयति  
पार्थिवम् ॥ वर्द्धनाद्रक्षणं श्रेयस्तन्नाशेन सदप्यसत् ॥ ३ ॥ आत्मानं प्र-  
थमं राजा विनयेनोपपादयेत् ॥ ततोऽमात्यांस्ततो भृत्यांस्ततः  
पुत्रांस्ततः प्रजाः ॥ ४ ॥ राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः  
समे समाः ॥ लोकास्तदनुवर्त्तते यथा राजा तथा प्रजाः ॥ ५ ॥  
नृपाणां च नराणां च दभयोस्तुल्यमूर्तिताः ॥ अधिक्यं तु क्षमा धैर्य-  
माङ्गा दानं पराक्रमः ॥ ६ ॥ सदानुरक्ताकृतिश्च प्रजापालनतप्तरः ॥  
विनीतात्मा हि नृपतिर्भूयसीं त्रियमश्रुते ॥ ७ ॥ प्रजा-  
न रंजयेद्यस्तु राजा रक्षादिभिर्गुणेः ॥ अजागलस्तनस्येव  
तस्य जन्म निरर्थकम् ॥ ८ ॥ अजामिव प्रजां हन्याद्यो मोहात्म-  
पैवीपतिः ॥ तस्येव जायते त्रिपादिर्द्वितीयस्य कथञ्चन ॥ ९ ॥  
पीडिनसंतापात्समुद्धृतो ह्रुताशनः ॥ राज्ञः कुलं त्रियं प्राणान्नाऽ-







पि संवृद्धः कुरुते भस्मसाद्रनम् ॥ २४ ॥ कौर्मि संकोचमास्था  
 प्रहारानपि मर्षयेत् ॥ कलेकाले च मतिमानुत्तिष्ठेत्कृष्णसर्पवत् ॥ २५  
 तावद्याद्विभेतव्यं यावद्यमनागतम् ॥ आगतं तु भयं द्वजा प्रह  
 र्त्तव्यमभीतवद् ॥ २६ ॥ परोऽपि हितवान्वधुर्वधुरप्यहितः परः  
 अहितो देहजो व्याधिर्हितमारण्यमौपधम् ॥ २७ ॥ यच्छ्रव्यं ग्रसि  
 आसं ग्रसितं परिणमेच्च यत् ॥ हितं च परिणामे स्यात्तदाद्यं भूति  
 मिच्छता ॥ २८ ॥ मा तात साहसं कार्यार्थभवैर्गर्वमागतः ॥ स्वग्राम  
 एषपि भाराय भवन्ति हि विपर्यये ॥ २९ ॥ मा त्वं तात वले स्थित्वा वधि  
 द्या दुर्वलं जनम् ॥ न हि दुर्वलदग्धानां कुले किञ्चित्प्ररोहति ॥ ३० ॥  
 यानि मिथ्याभिभूतानां पतंत्यशूणि रोदताम् ॥ तानि संतापकान्म  
 ा ॥ ३१ ॥ तात त्वं तात वले त्वं ये शूराः स्त्रीषु जातिषु गोषु  
 च ॥ ३२ ॥ देवव्रह्मस्वपुष्टानि सैन्यानि पृथिवीपते ॥ युद्धकाले विशीर्यन्ते सैकतास्सेतवो  
 यथा ॥ ३३ ॥ प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्रिदैवतं महत् ॥ एवं विद्रानवि-  
 द्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् ॥ ३४ ॥ अदैवं दैवतं कुरुदैवतं चाप्य-  
 दैवतम् ॥ ब्राह्मणा लोकपालांश्च सूजेयुश्चातिकोपिताः ॥ ३५ ॥ युगे युगे  
 च ये धर्मास्तेषु धर्मेषु ये द्विजाः ॥ तेषां निंदा न कर्तव्या युग्मणा  
 हि वै द्विजाः ॥ ३६ ॥ आकम्य ब्राह्मणभुक्तं परिक्षीणेश्च वा-  
 धवैः ॥ गोभिश्च नृपशादूलं राजसूयाद्विशिष्यते ॥ ३७ ॥  
 गतश्रीर्गणकान्देष्टि गतायुश्च चिकित्सकान् ॥ गतश्रीश्च गता-  
 युश्च ब्राह्मणान्देष्टि भारत ॥ ३८ ॥ बुद्धो कलुपभूतायां विकारे प्र-  
 त्युपस्थिते ॥ अनयोऽनयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति ॥ ३९ ॥ न  
 कालः सङ्गमुद्यस्य शिरः कृतति कस्यचित् ॥ कालस्य वलमेताव-  
 न्तिपरीतार्थदर्शनम् ॥ ४० ॥ जानन्नपि नरो दैवात्प्रकरोति विगर्हि-  
 ॥ न कर्म कस्यचिछोके गर्हितं रोचते कृतम् ॥ ४१ ॥ मातात



काणाः कुञ्जाश्च पण्डाश्च तथा वृद्धाश्च पंगवः ॥ एते  
 स्वांतःपुरे नित्यं नियोक्तव्याः क्षमाभृता ॥ ६८ ॥ सिद्धान्नमिव  
 राजेन्द्र सर्वसाधारणाः स्त्रियः ॥ परोक्षे च समक्षे च रक्षितव्याः  
 प्रयत्नतः ॥ ६९ ॥ सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसंगेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या हि सर्वदा ॥  
 द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥ ६० ॥ धर्मशास्त्रार्थ-  
 कुशलाः कुलीनाः सत्यवादिनः ॥ समाः शत्रौ च मित्रे च नृपतेः  
 स्युः सभासदः ॥ ६१ ॥ न सा सभा यत्र न संति वृद्धा न ते वृद्धा  
 ये न बदंति धर्मम् ॥ नासौ धर्मो यत्र नैवास्ति सत्यं न  
 तत्सत्यं यच्छ्लेनानुविद्म् ॥ ६२ ॥ सभा वा न प्रवेष्टव्या  
 वक्तव्यं नासमंजसम् ॥ अनुवन्विवुवन्वापि नरः किल्विपम  
 श्रुते ॥ ६३ ॥ तस्मात्सभ्यः सभां गत्वा रागदेपविवर्जितः ॥  
 वचस्तथाविधं वृयाद्यथा न नरकं ब्रजेत् ॥ ६४ ॥ पिता माता  
 गुरुर्भ्राता भार्या पुत्रः पुरोहितः ॥ नादण्डयो नाम राज्ञोऽरि-  
 स्वधर्मे यो न तिष्ठति ॥ ६५ ॥ अवध्यो ब्राह्मणो वालः स्त्री तपस  
 च रोगवान् ॥ क्रियन्ते व्यंगिता ह्येते ततो दोषैर्न लिप्यते ॥ ६६  
 न तु हन्यान्महीपालो दूतं कस्यांचिदापदि ॥ दूतान्हत्वा तु नर-  
 माविशेत्सचिवैः सह ॥ ६७ ॥ विश्वोधयेन्महीपालो मंत्रशालाम-  
 पतः ॥ अयुक्तो नार्हति स्थातुमस्यां मंत्ररहस्यवित ॥ ६८  
 मंत्रतंत्रापितप्रीतिर्देशकालोचितस्थितिः ॥ यथ राज्ञि भवेद्रत्त-  
 इमात्यः पृथिवीपते: ॥ ६९ ॥ अन्तःसारैरकुटिलैः सुस्तिः  
 रीक्षकैः ॥ मंत्रिभिर्धार्यते राज्यं सुस्तंभैरिव मंदिरम् ॥ ७० ॥ न  
 हितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके जनपदहितकर्ता मुच्यते पार्थि-  
 गति महति विवादे वर्तमाने समाने नृपतिजनपदानां दुर्लभ-  
 ा ॥ ७१ ॥ पद्माणो भवते मंत्रश्चतुप्कर्णः स्थिरो भवेत् ॥ द्विक-  
 रस्य ब्रह्माऽप्यतं न गच्छति ॥ ७२ ॥ पद्माणेषु न कर्तव्यो ॥



चटकं ममदेहेति शिष्टाः ॥ अथ प्रकृतमनुसरामः ॥ हन्यादेकं  
 न वा हन्यादिपुरुक्तो धनुष्मता ॥ उद्दिर्बुद्धिमता क्षिता हीते  
 राज्यं सनायकम् ॥ ७४ ॥ न तद्रथैर्न नागेन्द्रैर्न हयैर्न च पत्ति-  
 भिः ॥ कार्यं संसिद्धिमभ्येति यथा बुद्धया प्रसाधितम् ॥ ७५ ॥  
 दुर्योधनः समर्थोऽपि दुर्मत्री प्रलयं गतः ॥ राज्यमेकं चकारोच्चैस्त्सुम-  
 त्री चंद्रगुप्तकः ॥ ७६ ॥ अशृण्वन्नापि बोद्धव्यो मंत्रिभिः पृथिवीपातिः  
 तथा स्वदोपनाशाय विदुरेणांविकासुतः ॥ ७७ ॥ पृष्ठो दृते मितं  
 वृते परिणामे सुखावहम् ॥ मंत्री चेत्प्रियवक्ता स्यात्केवलं स रि-  
 पुः स्मृतः ॥ ७८ ॥ सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः ॥ अ-  
 प्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता सुदुर्लभः ॥ ७९ ॥ दुर्गाणि रा-  
 ज्ञा कार्याणि सजलाग्निहानि च ॥ द्रव्यमन्नं च तेष्वेव स्थापनं  
 प्रयत्नतः ॥ ८० ॥ दुर्गं बहुविधं ज्ञेयं पर्वतस्य जनस्य च ॥ प्राकारस्  
 वनस्यापि भूमेरापि भवेत्कचित् ॥ ८१ ॥ न गजानां सहस्रेण न ल  
 क्षेणैव वाजिनाम् ॥ तथा सिध्यन्ति कार्याणि यथा दुर्गप्रभावतः ॥ ८२ ॥  
 विपहीनो यथा सर्पो मदहीनो यथा गजः ॥ सर्वेषां वश्यतां याति  
 दुर्गहीनस्तथा नृपः ॥ ८३ ॥ शतमेको वशं धत्ते दुर्गस्थो हि धनुर्ध-  
 रः ॥ तस्माद्दुर्गं प्रशंसाति नीतिशास्त्रविदो जनाः ॥ ८४ ॥ एकः श-  
 तं योधयते प्राकारस्थो धनुर्धरः ॥ शतं सहस्राणि तथा सहस्रं  
 क्षमेव च ॥ ८५ ॥ विविधाः पुरुषा राजद्वात्माधममध्यमाः ॥ नि-  
 ययेत्तथैवैतांस्त्रिविधेष्वेव कर्मसु ॥ ८६ ॥ तुल्यार्थं तुल्यसामर्थ्यं  
 महां ध्यवसायिनम् ॥ अर्द्धराज्यहरं भृत्यं यो न हन्यात्स हन्यते ॥ ८७ ॥  
 निर्विशेषं यदा राजा सर्म भृत्येषु तिष्ठति ॥ तत्रोद्यमसमर्थानामु-  
 त्साहः परिहीयते ॥ ८८ ॥ प्रसादो निष्फलो यस्य कोधो यस्य नि-  
 यत्वा ॥ न तं भर्त्तारमिच्छति वृद्धं पतिमिवावलाः ॥ ८९ ॥ त्यजे-  
 त्साहं ॥ त्यजेत् ॥ कृपणादविशेषज्ञं तस्मा-



रोडपि सेव्यः स्याद्वंसाकरैः सभासदैः ॥ हंसाकारोडपि संत्याज्यो  
 गृथ्राकरैः सभासदैः ॥ १०७ ॥ चक्रं सेव्यं नृपः सेव्यो न सेव्यः  
 केवलो नृपः ॥ यस्य चक्रस्य माहात्म्यं मृत्तिपङ्कः पात्रता गतः ॥  
 ॥ १०८ ॥ गंतव्या राजसभा द्रष्टव्या राजपूजिता लोकाः ॥ यद-  
 पि न भवन्त्यर्थास्तथाप्यनर्था विनश्यांते ॥ १०९ ॥ अत्यासन्ना  
 विनाशाय दूरतश्चाफलप्रदाः ॥ मध्यभावेन सेव्यं राजा वह्निगुरु-  
 स्त्रियः ॥ ११० ॥ आसन्नमेव नृपतिर्भजते मनुप्यं विद्याविहीनमकुली-  
 नमसंगतं वा ॥ प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च यः पार्वतो भवति  
 ते परिवेष्टयांति ॥ १११ ॥ यस्मिन्नेवाधिकं चक्षुरारोपयति पार्थिवः ॥  
 कुलीनो वाऽकुलीनो वा स त्रियो भाजनं भवेत् ॥ ११२ ॥ ध-  
 वलान्यातपत्राणि वाजिनश्च मनोरमाः ॥ सदा मत्ताश्च मातंगाः  
 प्रसन्ने सति भूपतौ ॥ ११३ ॥ राजमातरि देव्यां च कुमारे मुख्य-  
 मंत्रिणि ॥ पुरोहिते प्रतीहरे सर्वं वर्तते राजवत् ॥ ११४ ॥ यत्रा-  
 हवेषु युद्धच्यन्ते स्वाम्यर्थमपराङ्मुखाः ॥ विकटैरायुधैर्याते ते  
 स्वर्गं योगिनो यथा ॥ ११५ ॥ पदानि क्रतुभिस्तुल्यान्याहवेष्य-  
 निवर्त्तिनाम् ॥ राजा सुकृतमादत्ते हतानां विपलायिनाम् ॥ ११६ ॥  
 तवाहं वादिनं क्लीवं निहंति परसंगतम् ॥ न हन्याद्विनिवृत्तश्च युद्धे  
 प्रक्षीणतां गतम् ॥ ११७ ॥ द्विजा अपि न गच्छन्ति यां गतिं चैव  
 योगिनः ॥ स्वाम्यर्थं संत्यजन्प्राणांस्तां गतिं यांति सेवकाः ॥ ११८ ॥  
 राजा तुष्टो हि भृत्यानां मानमात्रं प्रयच्छति ॥ तेऽपि संमानमन्वे-  
 ण प्राणैः प्रत्युपकुर्वते ॥ ११९ ॥ सारासारपरीवेत्ता स्वामी भृत्य-  
 स्य दुर्लभः ॥ अनुकूलः शुचिर्दक्षः प्राणैर्भृत्योऽपि दुर्लभः ॥ १२० ॥  
 अतितेजस्वयपि नृपः पानासक्तो न साधयत्यर्थान् ॥ तृणमपि दग्ध-  
 वेष्यः वडवायिः पिवन्नविधम् ॥ १२१ ॥ पानमक्षास्तथा नार्यो मृगया  
 नि युक्त्या सेवेत् प्रसंगो द्विवदोपवान् ॥ १२२ ॥



स्तथाविधा न संवृतांगान्निशिता इवेपवः ॥ १३७ ॥ कोऽहं कौ  
 देशकालौ समविपमगुणाः केऽरयः के सहायाः का शक्तिः कोऽ-  
 भ्युपायः फलमिह च कियत्कीदृशी दैवसंपत् ॥ संपत्तौ को  
 निवंधः प्रविदितवचनस्योत्तरं किं तु मे स्यादित्येवं कार्यसिद्धाव-  
 वहितमनसां सम्पदो हस्तसंस्थाः ॥ १३८ ॥ धर्मः प्रागेव चित्यः  
 सचिवगतमती सर्वदालोचनीये प्रच्छाद्यौ रागरौपौ मृदुकठि-  
 नरसौ योजनीयौ च काले ॥ ज्ञेयं लोकानुवृत्तं वरचरनयनैर्मण्डलं  
 वीक्षणीयमात्मा यत्नेन रक्ष्यो रणजिरासि पुनः सोपि नापेक्षणीयः  
 ॥ १३९ ॥ क्रतौ विवाहे व्यसने रिपुक्षये यशस्करे कर्मणि मित्र-  
 संग्रहे ॥ प्रियासु नारीष्वधनेषु वंधुषु धनव्ययस्तेषु न गण्यते दुर्घेः  
 ॥ १४० ॥ स्वाम्यमात्यश्च राज्यञ्च कोशं दुर्गवलं सुहृत् ॥ एताव-  
 दुच्यते राज्यं सत्वबुद्धिव्यपाश्रयम् ॥ १४१ ॥ संघिविश्रहयानानि  
 संस्थितिः संश्रयस्तथा ॥ द्वैधीभावश्च भूपानां पङ्कुणाः परिकी-  
 र्त्तिताः ॥ १४२ ॥ उत्साहस्य प्रभोर्मत्रस्यैवं शक्तिवर्यं जगुः ॥  
 आत्मनः सुहृदश्वैव तन्मित्रस्योदयास्त्रयः ॥ १४३ ॥ सामदानभेद-  
 देंडा इत्युपायचतुष्टयम् ॥ हस्त्यश्चरथपादाताः सेनांगं स्याच्चतुष्ट-  
 यम् ॥ १४४ ॥ दुष्टाविनीतशत्रूणां भयकृद्धंधुसविभम् ॥ शस्त्रधार-  
 णमौजस्यं रक्षोविद्युद्धापहम् ॥ १४५ ॥ वर्पानिलरजोघर्महिमा-  
 दीनां निवारणम् ॥ राज्यलक्ष्मीगृहं वर्णं चक्षुष्यं छत्रधारणम्  
 ॥ १४६ ॥ चामरं श्रीकरं दिव्यं राज्यशोभाकरं परम् ॥ सिंहासनं  
 सुखैश्वर्यकरं लोकानुरंजनम् ॥ १४७ ॥ सुमनोवररत्नानां धारणं  
 दिव्यरूपकृत् ॥ पापालक्ष्मीप्रशमनं चंदनाद्यनुलेपनम् ॥ १४८ ॥  
 स्नानं नाम मनःप्रसादजननं दुःस्वप्रविष्वसनं शौचस्यायतनं  
 ५४८ संवर्द्धनं तेजसाम् ॥ रूपोद्योतकरं मदप्रशमनं कामस्य  
 १ नारीणां च मनोहरं श्रमहरं स्नाने दृश्यते गुणाः ॥ १४९ ॥



पंच यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत् ॥ धनिक  
 श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पंचमः ॥ १९७ ॥ अनायके न  
 वस्तव्यं न वसेद्वलनायके ॥ आत्मनः शांतिमन्विच्छन्न  
 वसेद्वलनायके ॥ १९८ ॥ गुरुलाववर्मर्थानां प्रारंभे कर्मणां  
 फलम् ॥ यथावद्यो न जानाति स वालः प्रोच्यते बुधैः ॥ १९९ ॥  
 जन्मना त्राह्णणो ज्ञेयः संस्काराच्च द्विजो भवेत् ॥ वेदाभ्यासांच्च  
 विप्रः स्यात्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते ॥ २०० ॥ सर्वे यत्र विनेतारः सर्वे  
 पंडितमानिनः ॥ सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति तद्वृद्धमवसीदति ॥ २०१ ॥  
 नहीं हशं च सबलं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ दया मैत्री च भूतेषु दानं  
 च मधुरा च वाक् ॥ २०२ ॥ विवादो धनसंबंधो याचनं स्त्रीषु संगतिः ॥  
 आदानमयतः स्थानं मैत्रीभंगस्य हेतवः ॥ २०३ ॥ वालसखित्व-  
 मकारणहास्यं स्त्रीषु विवादमसज्जनसंगम् ॥ गर्दभयानमसंस्कृतवाचं  
 विजहि पडेतौङ्गुताहेतून् ॥ २०४ ॥ दर्शितानि कलत्राणि गृहे सु-  
 तमशंकितम् ॥ कथितानि रहस्यानि सौहृदं किमतः परम् ॥ २०५ ॥  
 न मातारि न दायादे न सौदर्येषु वंधुषु ॥ विश्रंभस्ताहशः  
 पुंसां यादाङ्गित्रे निरंतरम् ॥ २०६ ॥ शोकदुःखारातित्राणं  
 प्रीतिविश्रंभभाजनम् ॥ केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यदा-  
 द्यम् ॥ २०७ ॥ दुःखेन श्लिष्यते भिन्नं श्लिष्टं दुःखेन भिद्यते  
 मित्रश्लिष्टा तु या प्रीतिः सा दुःखैकप्रदायिनी ॥ २०८ ॥  
 ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं कुलम् ॥ तयोर्मैत्री विवाहश्च  
 तु पुष्टविषुष्टयोः ॥ २०९ ॥ चिदुके यस्य रोमाणि न वक्षसि  
 गंडयोः ॥ तेन मैत्री न कर्त्तव्या यदि निर्मातुपं जगद् ॥ २१० ॥  
 सरलयोः सखिसख्यमुदाहृतं तरलयोर्वटनैव न जायते ॥ यदि भ  
 सरलेन वा न चिरमस्ति धनुःशस्योरिव ॥ २११ ॥ दानं  
 शौर्यं च यस्य न प्रथितं यशः ॥ विद्यायामर्थलभे वा त



ते येन योपितः ॥२२८॥ स्त्रियस्तु यः कामयते सन्निकर्पे च गच्छ-  
 ति ॥ ईपत्प्रकुरुते सेवां तं तमिच्छांति योपितः ॥ २२९ ॥ यदैव  
 भर्ता जानीयान्मंत्रमूलपरां स्त्रियम् ॥ उद्दिजेत तदैवास्याः सर्पाद्वे-  
 इमगतादिव ॥ २३० ॥ जल्पन्ति सार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविश्रम-  
 म् ॥ हृदये चितयन्त्यन्यं न स्त्रीणामेकतो रतिः ॥ २३१ ॥ नाम्नि-  
 स्तृप्यति काष्टानां नापगानां महोदधिः ॥ नांतकः सर्वभूतानां न  
 पुंसां वामलोचना ॥ २३२ ॥ स्थानं नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति  
 प्रार्थयिता नरः ॥ तेन नारदं नारीणां सतीत्वमुपजायते ॥ २३३ ॥  
 सुवेपं पुरुषं हृद्वा भ्रातरं यदि वा सुतम् ॥ योनिः क्लियाति नारीणां  
 सत्यं सत्यं हि नारद ॥२३४॥ सा भार्या या प्रियं वृते स पुत्रो यत्र  
 निर्वृतिः ॥ तन्मित्रं यत्र विश्वासः स देशो यत्र जीविका ॥ २३५ ॥  
 लक्ष्म्या परिपूर्णो हं न भयं ते मोहनिद्रैपा ॥ परिपूर्णस्यैवेदोर्भवति  
 भयं सिंहिकासुनोः ॥२३६॥ अतिपरिचयादवज्ञा संततगमनादनाद-  
 रो भवति ॥ लोकः प्रयागवासी कूपे स्नानं समाचरति ॥ मलये  
 भिछ्पुरं ग्रिथं दनतरुमिंधनं कुरुते ॥ २३७ ॥ इति वा ॥ सन्निकर्पो  
 मनुष्याणामनादरणकारणम् ॥ गांगं हित्वा यथान्यां भस्त्रतत्यो  
 याति शुद्धये ॥ २३८ ॥ व्रजत्यधः प्रयात्युच्चैर्नरः स्वरेव चेष्टितः ॥  
 अधः कूपस्य खनक ऊर्ध्वं प्रासादकारकः ॥ २३९ ॥ त्राक्षे मुहूर्ते  
 पुरुषस्त्यजेन्निद्रामतं द्रितः ॥ नरं प्रातः प्रबुद्धं हि त्रयाति श्रीरुणात्रया  
 ॥२४०॥ नोत्तरस्यां प्रतीच्यां च कुर्वीत शयने शिरः ॥ शश्याविपर्यया  
 द्रूभों दितेः शकेण दारितः ॥ २४१ ॥ न कुर्यात्परदारेच्छां विश्वासं  
 स्त्रीपुर्वज्येत् ॥ हृतो दशास्यः सीतार्थं हतः पत्न्या विदूरथः ॥२४२॥  
 न मद्यव्यसनक्षीवः कुर्याद्वात्तां दिविपूर्वम् ॥ वृष्णयो हि यथुः क्षीवा-  
 स्त्रृणप्रहरणः क्षयम् ॥ २४३ ॥ दानं न त्वाथिते दद्यान्नं पश्चात्ताप-  
 • • • ॥ वलिनात्मापितो वंधे दानशेपस्य शुद्धये ॥ २४४ ॥



नदीनां च नसीनांच शृंगिणां शस्त्रपाणिनाम् ॥ विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीपु राजकुलेपु च ॥ २६२ ॥ न कुर्यादभिचारेच्छां वज्यादिकुहकक्रियाम् ॥ लक्ष्मणेनेद्वजित्कृत्याभिचारसमये हतः ॥ २६३ ॥ व्याकुलेऽपि महोत्पातैः स्मरेद्विष्णुं सदा हृदि ॥ शरतल्पगतो भीष्मः सस्मार गरुडध्वजम् ॥ २६४ ॥ संदेहोवैष्णवेभार्गेन काथोऽन्यैः कुदर्शनैः ॥ रामप्रभावमद्यापि पाथोधौ पद्य सेतुताम् ॥ २६५ ॥ अध्वा जरा मनुष्याणामनध्वा वाजिनां जरा ॥ असंभोगो जरा स्त्रीणां मालिन्यं वसनज्वरा ॥ २६६ ॥ अविधेयो भूत्यजनः शाठानि चित्राण्यदायकः स्वामी ॥ अविनयवती च भार्या मस्तकशूलानि चत्वारि ॥ २६७ ॥ दौर्मैत्र्यानुपतिर्विनश्यति यतिः संगात्सुतो लालनादिप्रोऽनध्ययनात्कुर्लं कुतनयाच्छीर्लं खलोपासनात् ॥ मैत्री चाप्रणयात्समृद्धिरनयात्स्नेहः प्रवासाश्रयाद्वीर्धमर्याद्यनवेक्षणादपि कृपिस्त्यागात्प्रमादाद्वनम् ॥ २६८ ॥ कोऽर्थान्प्राप्य न गर्वितो विपर्यिणः कस्यापदोऽस्तंगताः स्त्रीभिः कस्य न खंडितं भुवि मनः को नाम राज्ञां प्रियः ॥ कः कालस्य न गोचरांतरगतः कोर्थी गतो गौरवं को वा दुर्जनवागुरानिपतितः क्षेमेण जातः पुमान् ॥ २६९ ॥ कुविधैर्यं मद्यपे तत्त्वचित्ता सपेक्षांतिः स्त्रीपु कामोपशांतिः ॥ काके शौचं धूतकारे च सत्यं राजा मिवं केन दृष्टं श्रुतं वा ॥ २७० ॥ मांसं मृगाणां दशनं गजानां मृगद्विषां चर्म फलं द्वुमाणाम् ॥ स्त्रीणां हि रूपञ्च नृणां हिरण्यमेते गुणा वैरिकरा भवन्ति ॥ २७१ ॥ स्तव्धस्य नद्याति यशो विपर्यस्य मैत्री नष्टक्रियस्य कुलमर्थपरस्य धर्मः ॥ विद्यावलं व्यसनिनः कृपणस्य सौख्यं राज्यं प्रमत्तसचिवस्य नराधिपस्य ॥ २७२ ॥ शाठयेन मिवं कपटेन धर्मः परोपतापेन समृद्धिभावम् ॥ सुखे सुपुरुषेण नारीं वांछन्ति ये व्यक्तमपंडितास्ते ॥ २७३ ॥ धातु



स्वमहिमा यद्यरित कि मंडनेः सद्ग्रीवा यदि कि धनेरपयशो यद्य-  
स्ति कि मृत्युना ॥ २८५ ॥ मित्रं स्वच्छतया रिषुं नयवलेलुर्व्वं  
धनेरीश्वरं कायेण द्विजमादरेण युवतीं प्रेम्णाऽतितीव्रं स्तवैः ॥  
वंधुं क्षांततया गुरुं प्रणतिभिर्मूर्खं कथाभिर्द्विधं विद्याभीरसिकं रसेन  
सकलं शीलेन कुर्याद्वशम् ॥ २८६ ॥ वाणी चारुगतिः शशांकध-  
वलं छत्रं प्रियाः पृष्ठतः प्रोत्तुंगस्तनमंडला विजयिनो भृत्याः पुरः  
पंचपाः ॥ तांवूलं प्रचुरं सखा स चतुरः संपद्यते चेत्पथि प्राहुस्त-  
त्कटकप्रयाणमितरत्प्राणप्रयाणं बुधाः ॥ २८७ ॥ जबो हि सते:  
परमं विभूपणं त्रपांडगनायाः कृशता तपस्त्विनः ॥ द्विजस्य विद्या नृ-  
पतेरपि क्षमा पराक्रमः शस्त्रवलोपजीविनाम् ॥ २८८ ॥ वासः शुभ्र-  
मृत्युर्वसंतसमयः पुष्पं शरन्मालती धानुप्कः कुसुमायुधः परिमलः  
कास्त्रूरिकोऽस्त्रं धनुः ॥ वाणी तर्करसोज्ज्वला प्रियतमा श्यामा  
यो नृतनं मार्गः शांभव एव पञ्चमलया गीतिः कविर्विहणः  
॥ २८९ ॥ शशुर्दहति संयोगे वियोगे मित्रमप्यहो ॥ उभयोर्दुःखदायित्वं  
को भेदः शशुमित्रयोरित्यलम् ॥ एवमशशास्त्रं गजशास्त्रं शिलिप-  
शास्त्रं सूपकरणशास्त्रं चतुःपाष्टिकलाशास्त्रं चेतिनानाशास्त्रं शोलिहा-  
यादि नानामुनिभिः प्रणीतं तस्य च सर्वस्य लौकिकतत्प्रयोजन-  
भेदो द्रष्टव्यः ॥ एवमष्टादश विद्यास्त्रयीशब्देनोक्तास्तथा सांख्यशा-  
स्त्रं भगवता कपिलेन प्रणीतम् ॥ अथ त्रिविधदुःखात्यंतनिवृत्तिर-  
यंतपुरुपार्थं इति पठध्यायम् । तत्र प्रथमेऽध्याये विपया निरूपिताः ।  
द्वेतीयेऽध्याये प्रधानकार्याणि । तृतीये विपयेभ्यो वैराग्यम् । चतुर्थेऽ-  
याये विरक्तानां पिंगलाकुररादीनामाख्यायिका । पंचमे परपक्ष-  
नेर्जयः । पष्टे सर्वार्थसंक्षेपः । प्रकृतिपुरुपीविवेकज्ञानं सांख्यशास्त्रप्रयो-  
गानम् । तथा योगशास्त्रं भगवता पतंजलिना प्रपञ्चितमथ योगातु-  
नमित्यादिपादचतुष्टयात्मकम् ॥ तत्र प्रथमे पादे चित्तवृत्ति-



वैष्णवाः । स्वप्रकाशपरमानंदाद्वितीयं ब्रह्म स्वमायाषशान्मिथ्यैव  
जगदाकारेण कल्पते इति तृतीयपक्षो ब्रह्मवादिनां सर्वेषां प्रस्थान-  
कर्तृणांच । विवर्तवादेच पर्यवसानेनाद्वितीये परमेश्वर एव वेदान्तप्र-  
तिपाद्ये तात्पर्यं न हि ते मुनयो भ्रान्ताः सर्वज्ञत्वात्तेषां किन्तु  
वाहिर्विपय एव प्रवणानामापाततः परमपुरुषार्थे प्रवेशो न संभव-  
तीति नास्तिक्यनिवारणाय तैः प्रस्थानभेदा दर्शितास्तत्र तेषां  
तात्पर्यमबुद्ध्वा वेदविरुद्धेऽप्यर्थे तेषां तात्पर्यमुत्प्रेक्षमाणास्तत्तन्मत-  
मेवोपादेयत्वेन गृह्णन्तो जना ऋजुकुटिलपथजुपो भवतीति न  
सर्वेषामृजुमार्गं एव प्रवेशो न वा पर्यवसानेऽपि परमेश्वरप्राप्तिरंतः-  
करणशुद्धिवशेन पश्चाहजुमार्गाश्रयणादेव तत्प्राप्तिः । ऋजुमार्गस्तु  
भागवतधर्माश्रयणमेव सत्रीचीनो ह्यर्थं पंथा इति श्रीशुक्लेः । एष  
एवहि लोकानां शिवः पंथाः सनातनः ॥ यं पूर्वे चातुर्संतस्थुर्यत्र  
देवी जनार्दन इति भागवतोक्तेश्च ॥ यानास्थाय नरो राजन्न स्वरूपे  
पतेदिहेति योगेश्वरोक्तेश्च ॥ तथा च सर्वेषां मार्गाणां साक्षात्परं परयाव  
परमात्मैव यथा ऋजुकुटिलपथजुपां सरितां समुद्र एव गम्य इति  
यथा ऋजुपथजुपां गंगानर्मदादीनां साक्षादेव समुद्रो गम्यः कुटिलप  
थजुपां यमुनासरय्वादीनां गंगाद्वारा समुद्र एव गम्य इति । एव  
वेदान्तवाक्यथ्रवणादिनिष्ठानां साक्षात्त्वं गम्योऽन्येषां तु सांख्यानुया-  
यिनां तार्किकाणां चतुर्विंशतितत्त्वद्वयादिसप्तपदार्थविक्लात्मज्ञा-  
नेन मीमांसाधर्मशास्त्रोतिहासपुराणानुयायिनां तत्तच्छास्त्रोदितक-  
र्मानुष्टायिनामन्तःकरणशुद्धिद्वारा कामशास्त्रानुयायिनां तु विष-  
यानुभवविरक्तानां वैराग्यद्वाराऽऽयुर्वेदस्य तु तपोयज्ञार्चनादिष्पा-  
रोग्यस्यैव योग्यत्वेन तत्संपादनद्वारा धनुर्वेदस्य निजधर्मतात्त-  
- :करणशुद्धिद्वारा शिल्पनीत्यादिविद्यानुयायिनामपि  
थंचिदंतःशुद्धिद्वारैव शाक्तसौरगणणपत्तादीनां तु 'तेऽपि मामे-



श्रुतिस्मृतिभ्यामित्यर्थः । प्रत्यक्षं श्रुतिरनपेक्षत्वात् । अनुमानं स्मृतिरनुमीयमानश्रुतिसापेक्षत्वात् । तथा च श्रुतिः । एत इति वै प्रजापतिर्देवानसृजतासृग्रमिति मनुष्यानिंदव इति पितृस्तिरः पवित्रमिति ग्रहानाशव इति स्तोत्रं विश्वानीति शस्त्रामिति अतिसौभगेत्यन्याः प्रजा इति तथा स मनसा वाचं मिथुनं समभवदिति । अस्यार्थः । एते असृग्रमिंदवस्तिरः पवित्रमाशवः विश्वान्यभिसौभगेत्यत्मन्त्रस्थपदैर्देवादीन्स्मृत्वा ब्रह्मा ससर्ज तत्रैतच्छब्द इंद्रियाधिष्ठातृदेवस्मारकः असृग्रशब्द असृक्षशब्दवाच्यरुधिरप्रधानदेहरमणमनुष्यस्मारकः । इन्दुमंडलमध्यवार्त्तिपितृस्मारक इन्दुशब्दः । पवित्रं सोमस्वमध्ये तिरस्कुर्वतां धारयतां ग्रहाणां तिरः पवित्रशब्दः स्मारकः । ऋचोऽशुवतां स्तोत्राणां गानस्वनरूपाणामाशवः शब्दः स्मारकः । विश्वदेवशंसनशस्त्राणां विश्वशब्दः स्मारकः । अभिसौभगेतिशब्दो निरतिशयसौभाग्यवाचकः ॥ प्रजानां स्मारक इति सप्रजापतिर्मनसा सह वाचं मिथुनभावं समभवत्समभावयत् । तत्प्रकाशितां सृष्टिं मनसालोचितवानिति यावत् । स्मृतिस्तु सर्वेषां तु सनामानीत्यादिका मन्वादिप्रणातैव पृथक्संस्थाश्वेति लौकिकीश्वव्यवस्थाः कुलालस्य घटनिर्माणं कुर्विदस्य पटनिर्माणमित्यादिका विभागेनिर्मितवानित्यर्थः । चमत्कारचंद्रिकायां तु पञ्चभूतग्रहादिसृष्टिर्मातृकात एवोक्ता पद्मनिर्माणप्रकरणो तथाहि । वर्णनामुद्गवः पथाद्यक्षिः संख्या ततः परम् । भूतवीजविचारश्च ततो वर्णग्रहा अपीत्यारभ्य एतत्सर्वमविज्ञाय यदि पद्मवेदत्कविः ॥ केतकारूढकपिवद्वेत्कंटकपीडितः ॥ इति ॥ कारणात्पञ्चभूतानामुद्गृता मातृका यतः अतो भूतात्मका वर्णाः पञ्च पञ्चविभागतः ॥ वाच्यग्रन्थभूजलाकाशाः पञ्चाश्छिप्यः क्रमात् । पञ्च हृस्त्वाः पञ्च दीर्घां विद्वन्ताः संधयस्त्यथा ॥ तत्र स्वरेभ्यः सूर्योऽयं कवगेभ्यस्तुलोहितः । चर्वर्गप्रभवः काव्यएवगांडुपसंभवः ॥



प्रोक्तं गुरुणां किंचिदेव हि । वंशीधरेण विदुपा सर्वपत्तनवासिना ।  
 गौडकौशिकगोव्रेण शास्त्रतत्त्वविदां मुदे । यद्यत्र स्वलितं किञ्चित्  
 छीमांद्याद्वा प्रमादतः । मय्यल्पज्ञे कृपां कृत्वा विद्वांसः पूरयन्तु  
 तत् ॥ किं च ॥ मातृकापाठनादौ हि पाठ्यांति क्वचिदुधाः । ओंनमः  
 सिद्धमित्येतत्तदर्थस्त्वेष ईर्यते ॥ ओंकोर्थः । ब्रह्मणे सगुणनिर्गुण-  
 मूर्त्ये नमो नतिरस्तु । अत्र इति पदमध्याहृत्य सिद्धपदेन योज्यम् ।  
 इह नम इत्युपलक्षणमर्चनादेरपि । अत्रायं भावः । यदिह लोके  
 सगुणपदवाच्या ये भगवतो गुणवतारलीलावतारादयस्तथा निर्गु-  
 णपदवाच्यं यत्सञ्चिदानंदाद्वितीयं ब्रह्म तेषां तस्य च यथासंभवं  
 नत्यादयो विचारश्च नृभिः कियंते चैतदेव सिद्धं सर्वशास्त्रपरिशी-  
 लनेनैतदेव सिद्धांतत्वेन निश्चितमिति । तदुक्तम् । वेदे रामायणे  
 चैव पुराणोपपुराणयोः । भारते धर्मशास्त्रे च पांचरात्रादिपु-  
 क्रमात् ॥ वर्ण्यते सर्वशास्त्रज्ञैर्घ्येयो नारायणः सदेति ॥ तथा ।  
 यत्कीर्त्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् । लोक-  
 स्य सद्यो विधुनोति किल्वयं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥  
 इति श्रीमुनीद्वौक्तेः । सर्वे वेदा यत्पदमामनंतीति श्रुत्याऽपि सर्वे  
 वेदसिद्धांतत्वैनैतदेव निर्णीतं स्वयं भगवताऽपि वेदैश्च सर्वैरहं  
 वेद्य इति वर्णितम् । तथा पृथुचरित्रेऽपि । शास्त्रेष्वियानेव सुं  
 धितो नृणां क्षेमस्य सध्यङ्ग विमृशेषु हेतुः । असंगमात्मव्यतिरि-  
 आत्मनि हृषी रतिब्रह्मणि निर्गुणे च या ॥ इति सर्वं त्यत्त्वा ब्रह्मण्ये  
 रतिः कार्येति विहितम् । श्रीकपिलदेवेनाप्युक्तम् । एतावानेव लं  
 केऽस्मिन्पुंसां निःश्रेयसोदयः । तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पि  
 स्थिरमिति । भक्तयंगेष्वापि प्रणतेरेवैहिकामुम्बिकफलदत्तेन मुख्य-  
 त्वम् । तदुक्तं भारते । एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमे  
 धावभृथेन तुल्यः ॥ दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी-  
 पुनर्भवायेति । किञ्च । ओमिति ब्रह्मण्यर्थेऽव्ययं तत्त्वाच्चतुर्थ्य



उतेः पद्मानुते रम्येमंनोहरेः । किञ्चिभिष्टो हरिः नहिः न इते  
ति वाक्यत्वा सर्वे गेन स नहिः । पह चेपने कर्मणि किरोगा  
ः । 'तत्य वाक्तवी' इत्यादिभुतेः । पुनः परः पिषतीं पात्य-  
टीकान्कामेः पूरयति वेति परा पृष्ठा लनपूरणयोस्तोऽच । पकः  
त्य शृंगारादेः पतिनाथः पुनः आसमेतादिगर्भीत्यारिः सर्वं एव  
गतापतो यातोरिरोजादिकः । च पुनः यो सास्य शृंगारस्य  
योस्त्वस्त्वं गतं रासमंडलमातत्वास्त्वार्थ । अत्र योनिशेषां  
यातुर्विन्दनार पूरा । किञ्चत् परत्रतं निद्रायांशेन आ द्वेष्टु निराम्य  
प्रमधियग्नित्यप्यः । यज्ञ हरिः यान् शीढिते याप्येति । मात्रा  
यस्तद्वर्य शर्गारमात्रत शृणान् । अत्र वतुपांखे ज्ञेयः । गतवी तु  
तत्त्वापांखपदान्तर्छिटेः प्रत्ययः पुनर्निर्वाक्यानाप्येति । शीढः  
एवं पुनर्नानिर्विभाः । किञ्चुलं शरीरमध्यर शेषे प्रत्येषो  
त् यस्तद्विन्दनाय गंशपम् । द्वेष्टुर् ॥ 'यस्मिन्दग्नाम् पर्वि'

प्रभागः ॥ १ ॥



# जाहिरात ।

## ताजिकनीलकंठी भाषाटीका ।

उक्त ग्रंथका भाषानुवाद तीनो संत्र एकत्रित कर ज्योतिर्विद् ५० महीयर्जनि ऐसा कठिन अंथ होनेपरभी ऐसी सरल टीका तथा गूढ़शयों का प्रकाश कियाहै कि जिसके द्वारा सामान्य श्रेणीके मनुष्यभी भलीभांति वर्ष जन्मपत्र फलादेश प्रश्नादि बता सकेहैं वैसेही शुद्धतापूर्वक टैपमें चक्र और उदाहरणों सहित उच्चम कागजमें छापी गईहैं जिसके देखनेसे चित्र प्रसन्न होजायगा और उच्चम विलायती कपड़ेकी जिल्द बांधी गईहै, मूल्य केवल १॥ रु० मात्र है

---

## शार्ङ्गधर वैद्यक दत्तराम चौबैकृतभाषाटीकासहित ।

यह टीका आढमछी और गूढ़ार्थ प्रकाशिका जो इस्की संस्कृतटीका हैं उनके अनुसार भाषाटीका करीगई है. यद्यपि इस ग्रंथकी टीका कई भिप्पवरोंने कीहैं परन्तु इस रीतिसे गूढ़शयोंकी टिप्पणी समन्वितकर विस्तार पूर्वक किसीने नहींकीहै तिसपरभी मूल्य केवल तीन ३ रु० रखताहै विलायती कपड़ेकी जिल्द बाँधीहै और नया छपाहै ।

---

## पातंजलि—योगदर्शन तथा सांख्यदर्शन भाषानुवाद सहित ।

देखो ! इसपातंजलि सूत्र भात्रका ऐसा बहुत और ऊचिर भाषानुवाद किया गया है कि पढ़ते २ ग्रंथका व्याख्य चित्रमें उभ जाता है । मूल्य केवल योगदर्शनका १ रु० और सांख्यदर्शनका १॥ रु० है ।

---

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास-

“ श्रीवेंकटेश्वर ” छापाखाना—मुम्बई ।



जाहिरातः

## भक्तमाला रामरसिकावली ।

उपरोक्त ग्रंथ में सत्युग से कलियुग पर्यन्त चारों युगों के नगवद्धकों के जीवनचरित्र रोचक सरल दोहा चौपाई कविताएँ इन्द्रों में श्रीमहाराजा साहव रीवांधिपति श्रीरघुराजसिंहदेव जृ हादुर जी ने रचे हैं, काव्य की रोचकता से वांचतेही हृदयमें अकिञ्चनन्म होजाती है । ग्रंथ पृष्ठ ११६८ में पूर्ती है, जिल्द धी है । मूल्य केवल ४ रु० मात्र ॥

## महाभारत सवलसिंह १८ पर्व ।

महाशयो ! आजतक यह अमूल्य ग्रंथ जहाँ तहाँ छपा; परन्तु संपूर्ण होनेसे भारतकथाभिलापियोंका अभीष्टप्रद न हुवा । अतएव मने वर्षोंसे ढूँढ़ते २ बहुत बड़े परित्रमसे संपूर्ण ( १८ ) पर्व एक वेतकर स्वच्छतापूर्वक सुन्दर अक्षरोंमें मुद्रित की है विलायती उपड़ेकी अच्छी जिल्द वंधी है मूल्य केवल ३ ॥ रु० मात्र रखते सर्व सामान्यकी सुगमताके लिये चार भागकर मू० एक एक ५०रक्खा है ।

और भी भापाकाव्यकी नाना प्रकारकी प्राचीन नवीन पुस्तकें उपकर विक्रयार्थ प्रस्तुत हैं ।

पुस्तक मिलने का ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

“श्रीवेङ्कटेश्वर” छापाखाना

बम्बई.

